माता-पिता से

गिजुभाई

© विमुबेन बधेका
दक्षिणामूर्ति बाल मन्दिर
भावनगर–364002 (गुजरात)

प्रकाशक
मॉण्टेसरी बाल शिक्षण समिति
राजलदेसर

आर्थिक सहयोग
हिम्मत भाई पारीख
हिम्मत लाल एण्ड कम्पनी
कोटगेट, बीकानेर

प्रकाशन वर्ष : 1987
प्रतियां : 1100
मूल्य : आठ रुपये मात्र

मुद्रक :
सांखला प्रिंटर्स,
सुगन निवास, बीकानेर

प्रकाशकीय

हमारे साथियों ने जब यहां पर सन् 1954 में अभिनव बाल भारती नामक संस्था स्थापित की थी, तभी मेरे जेहन में बाल-शिक्षण के साथ ही साथ अध्यापकों को प्रशिक्षण देने का विचार भी उठ रहा था बल्कि अभिभावकों द्वारा प्रशिक्षण लेने का विचार भी मेरे मन में बहुत प्रबल था। मैं सौभाग्यशाली रहा कि एक बार कलकत्ते में मुझे प्रख्यात बाल शिक्षाविद् स्व. के. यू. भामरा से प्रशिक्षण लेने अवसर मिला, सन् 1958-59 में।

उस प्रशिक्षण ने मेरे चिंतन की दिशा को और भी पुष्ट कर दिया कि बाल-शिक्षण के लिए अध्यापकों का ही नहीं, माता-पिताओं का भी नजरिया बदलना जरूरी है। मेरे आग्रह पर स्व. के. यू. भामरा यहां पधारे और सन् 1962 में उन्होंने मोंटेसरी प्रशिक्षण का काम शुरू किया। आज 25 वर्षों से अध्यापकों के शिक्षण-प्रशिक्षण का कार्यक्रम यहां जारी है और अब तक लगभग 200 अध्यापक प्रशिक्षण का लाभ हासिल कर चुके हैं।

मैं अब भी बराबर अनुभव करता रहा हूं कि अध्यापक बनने के लिए मोंटेसरी-शिक्षण का प्रशिक्षण लेना एक बात है, और बच्चों के माता–पिता बनने के लिए प्रशिक्षण लेना एक अलग अहमियत रखता है। मेरी पत्नी और दोनों पुत्रियों ने महज इसी इरादे से प्रशिक्षण लिया था। मैं चाहता हूं कि अभिभावकों को इस दिशा में प्रेरित किया जाना जरूरी है। इसी इरादे से पिछले दिनों हमने सस्था में 'अभिभावकत्व शिक्षण' पर एक संगोष्ठी भी आयोजित की थी। संगोष्ठी में बाल-शिक्षण के अछूते पक्षों पर तो रोशनी डाली ही गई, सस्था के लिए एक सुझाव भी सामने आया कि माता-पिता की शिक्षा के लिए शैक्षिक-साहित्य प्रकाशित कराया जाए। हमने इसे स्वीकार किया और पहला कदम यह उठाना जरूरी समझा कि देश के महान बाल शिक्षाविद स्व. गिजुभाई बधेका की गुजराती भाषा में लिखी हुई

पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद करवाकर पुस्तकाकार प्रकाशित करें । इस दिशा में इंदौर के महान गांधीवादी चिंतक एवं मध्यभारत के प्रथम शिक्षामन्त्री श्री काशिनाथ त्रिवेदी का हमें अभूतपूर्व सहयोग एवं प्रोत्साहन मिला । स्व. गिजुभाई की अनेक पुस्तकों का वे सन् 1930-32 के कार्यकाल में ही अनुवाद कर चुके हैं और शेष का भी अनुवाद करने का उनका संकल्प है । इसी दिशा में मुझे 'शिविरा पत्रिका' के संपादकीय सहकर्मी श्री रामनरेश सोनी का भी सहयोग मिला है ।

पुस्तक प्रकाशन का काम अपने आप में बहुत कठिन होता है, विशेषतया अर्थ के अभाव में तो असम्भव प्राय: हो जाता है । पर हमारा सौभाग्य है कि मेरे अनुरोध को यशस्वी दानदाताओं ने स्वीकार किया और प्रत्येक पुस्तक को अकेले अपने ही आर्थिक-सहयोग से छपाने का भार वहन किया है ।

माता-पिता से के प्रकाशन का व्यय भार श्री दिलीप भाई पारीख ने वहन करने में पहल की है क्योंकि उनके पिता और गिजुभाई के परम भक्त स्व. हिम्मत भाई इसे काफ़ी पहले स्वयं प्रकाशित करना चाहते थे । इस अवसर पर हिम्मत भाई की याद आनी स्वाभाविक है । गिजुभाई के ग्रंथमाला के प्रकाशन की सबसे पहली खुशी उन्हें होती और वे स्कूल-स्कूल जाकर पेम्पलेट बांटने लग जाते तो कोई आश्चर्य नहीं । हम उनकी संलग्नता को वंदन करते हैं ।

इस पुस्तक की भूमिका जाने माने शिक्षाविद और 'शिविर', 'नया शिक्षक' के वरिष्ठ संपादक श्री इन्द्रनारायण मूथा ने लिखी हैं, एतदर्थ हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ । श्रीयुत् काशिनाथजी तथा श्रद्धेया 'विमुबेन बधेका के सौहार्द्र-सहयोग के लिए भी हम अभारी है ।

—कुन्दन बैद

मॉण्टेसरी बाल शिक्षण समिति
राजलदेसर

संपादक का निवेदन

हिन्दी में गिजुभाई-ग्रंथमाला का अवतरण

अपने जन्म से पहले अपनी माँ के गर्भ में, और जन्म के बाद अपने माता-पिता और परिवार के बीच, हमारे निर्दोष और निरीह बच्चों को हमारी ही अपनी नादानी, नासमझी और कमजोरियों के कारण शरीर और मन से जुड़े जो अनगिनत दु:ख निरन्तर भोगने पड़ते हैं, जो उपेक्षा, जो अपमान, जो तिरस्कार, जो मार-पीट और डांट-फटकार उनको बराबर सहनी पड़ती है, यदि कोई माई का लाल इन सब पर एक लम्बी दर्द-भरी कहानी लिखे, तो निश्चय ही वह कहानी हम में से जो भी संवेदनशील हैं, और सहृदय हैं, उनको रुलाए बिना रहेगी ही नहीं । अपने ही बालकों को हमने ही तन-मन के जितने दु:ख दिए हैं, चलते-फिरते और उठते-बैठते हमने उनको जितना मारा-पीटा, रुलाया, सताया और दुरदुराया है, उसकी तो कोई सीमा रही ही नहीं है । इन सब की तुलना में हमारे घरों में बालकों के प्यार-दुलार का पलड़ा प्राय: हलका ही रहता रहा है ।

ऐसे अनगिनत दुखी-दरदी बालकों के बीच उनके मसीहा बनकर काम करने वाले स्वर्गीय गिजुभाई बधेका की अमृत वर्षा करने वाली लेखनी से लिखी गई, और माता-पिताओं और शिक्षक-शिक्षिकाओं के लिए वरदान रूप बनी हुई छोटी-बड़ी गुजराती पुस्तकों के हिन्दी अनुवाद इस गिजुभाई-ग्रंथमाला के नाम से प्रकाशित करने का सुयोग और सौभाग्य बाल शिक्षा के काम में लगी हमारी एक छोटी-सी शिक्षा-संस्था को मिला है, इसकी बहुत ही गहरी प्रसन्नता और धन्यता हमारे मन: प्राण में रम रही है । हमको लगता है कि इससे अधिक पवित्र और पावन काम हमारे हिस्से न पहले कभी आया, और न आगे कभी आ पायगा । हम अपनी इस कृतार्थता को किन शब्दों में और कैसे व्यक्त करें, इसको हम समझ नहीं पा रहे हैं । नम्रता-पूर्वक मानते हैं कि परम मंगलमय प्रभु की परम सुख देने वाली आन्तरिक प्रेरणा का ही यह

एक मधुर और सुखद फल है। इसको लोकात्मा रूपी और घट-घट व्यापी प्रभु के चरणों में सादर सविनय समर्पित करके हम धन्य हो लेना चाहते हैं।

त्वदीय वस्तु गोविन्दं तुभ्यमेव समर्पयेत्।

क्राउन सोलह पेजी आकार के कोई ढाई से तीन हजार की पृष्ठ-संख्यावाली इस गिजुभाई ग्रंथमाला में गिजुभाई की जिन 15 पुस्तकों के हिंदी अनुवाद प्रकाशित करने की योजना बनी है, उनमें तीन पुस्तकें माता-पिताओं के लिए हैं। तीनों अपने ढंग की अनोखी और मार्गदर्शक पुस्तकें हैं। घरों में बालकों के जीवन को स्वस्थ, सुखी और समृद्ध बनाने की प्रेरक और मार्मिक चर्चा इन पुस्तकों की अपनी विशेषता है। ये हैं :

1. माता-पिता से
2. मां-बाप बनना कठिन है, और
3. माता-पिता के प्रश्न।

बाकी बारह पुस्तकों में बाल-जीवन और बाल-शिक्षण के विविध अंगों की विशद चर्चा की गई है। इनके नाम यों है :

1. मॉण्टेसरी-पद्धति
2. बाल-शिक्षण, जैसा मैं समझ पाया
3. प्राथमिक शाला में शिक्षा-पद्धतियां
4. प्राथमिक शाला में शिक्षक
5. प्राथमिक शाला में भाषा-शिक्षा
6. प्राथमिक शाला में चिट्ठी-वाचन
7. प्राथमिक शाला में कला-कारीगरी की शिक्षा, भाग 1-2
8. दिवास्वप्न
9. यदि आप शिक्षक हैं
10. चलते-फिरते
11. यह कैसी सिरपच्ची ?
12. कथा-कहानी का शास्त्र, भाग 1-2

इन में 'मॉण्टेसरी पद्धति', 'दिवास्वप्न' और 'कथा-कहानी का शास्त्र' ये तीन पुस्तकें अपनी विलक्षणता और मौलिकता के कारण शिक्षा जगत् के लिए गिजुभाई की अपनी अनमोल और अमर देन बनी हैं। इनमें बाल-देवता के पुजारी और बाल-शिक्षक गिजुभाई ने बहुत ही गहराई में जाकर अपनी आत्मा को उंडेला है। बाल-जीवन और बाल-शिक्षण के मर्म को समझाने में ये अपने पाठकों की बहुत मदद करती हैं। बार-बार पढ़ने, पीने, पचाने, और अपनाने लायक भरपूर सामग्री इनमें भरी पड़ी है। ये अपने पाठकों को बाल-जीवन की गहराइयों में ले जाती हैं, और बाल-जीवन के मर्म को समझाने में पग-पग पर उनकी सहायता करती रहती हैं।

गिजुभाई की इन पन्द्रह रचनाओं में से केवल दो रचनाएं, 'दिवास्वप्न' और 'प्राथमिक शाला में भाषा-शिक्षा' सन् 1934 में पहली बार हिन्दी में प्रकाशित हुई थीं। शेष सब रचनाएँ अब सन् 1987 में क्रम-क्रम से पुस्तक के रूप में प्रकाशित होने वाली हैं। पचास से भी अधिक वर्षों तक हिन्दी-भाषी जनता का हमारा शिक्षा-जगत् इन पुस्तकों के प्रकाश से वंचित बना रहा। न गिजुभाई का जन्म शताब्दी वर्ष आता, और न यह पावन अनुष्ठान हमारे संयुक्त पुरुषार्थ का एक निमित्त बनता। 15 नवम्बर 1984 को शुरू हुआ गिजुभाई का जन्म शताब्दी वर्ष 15 नव. 1985 को पूरा हो गया। किन्तु गुजरात की बाल-शिक्षा-संस्थाओं ने और बाल-शिक्षा-प्रेमी भाई बहनों ने गुजरात की सरकार के साथ जुड़कर जन्म शताब्दी वर्ष की अवधि 15 नवम्बर, 86 तक बढ़ाई, और गिजुभाई के जीवन और कार्य को उसके विविध रूपों में जानने और समझने की एक नई लहर गुजरात भर में उठ खड़ी हुई। गुजरात के पड़ोसी के नाते उस लहर ने राजस्थान, मध्यप्रदेश और उत्तरप्रदेश के हम कुछ साथियों को भी प्रेरित और प्रभावित किया। फलस्वरूप गिजुभाई ग्रंथमाला को हिन्दी में प्रकाशित करने का शुभ संकल्प राजस्थान के राजलदेसर नगर के बाल-शिक्षा प्रेमी नागरिक भाई श्री कुन्दन बैद के मन में जागा, और उन्होंने इस ग्रंथमाला को हिन्दी-भाषी जगत् के हाथों में सौंपने का बीड़ा उठा लिया।

हमको विश्वास है कि भारत का हिन्दी-भाषी जगत्, विशेषकर उसका हिन्दी-भाषी शिक्षा-जगत्, अपने बीच इस गिजुभाई ग्रंथमाला का भरपूर स्वागत, मुक्त और प्रसन्न मन से करेगा, और इससे प्रेरणा लेकर अपने क्षेत्र के बाल-जीवन और बाल-शिक्षण को सब प्रकार से समृद्ध बनाने के पुण्य-पावन कार्य में अपने तन मन धन की तल्लीनता के साथ जुट जाना पसन्द करेगा।

हिन्दी में गिजुभाई ग्रन्थमाला के अवतरण की इससे अधिक सार्थकता और क्या हो सकती है ?

अपने जीवन-काल में गिजुभाई ने अपनी रचनाओं को अपनी कमाई का साधन बनाने की बात सोची ही नहीं। अपने चिन्तन और लेखन का यह नैवेद्य भक्ति भावपूर्वक जनता जनार्दन को समर्पित करके उन्होंने जिस धन्यता का वारण किया, वह उनकी जीवन-साधना के अनुरूप ही रहा। गिजुभाई के इन पदचिह्नों का अनुसरण करके हमने भी अपनी गिजुभाई-ग्रंथमाला को व्यावसायिकता के स्पर्श से मुक्त रखा है और ग्रंथमाला की सब पुस्तकों को उनके लागत मूल्य में ही पाठकों तक पहुंचाने का शुभ निश्चय किया है।

बीकानेर, राजस्थान, के हमारे बाल-शिक्षा-प्रेमी साथी, जाने-माने शिक्षा-विद् और गिजुभाई के परम प्रशंसक श्री रामनरेश सोनी इस ग्रन्थमाला के अनुष्ठान को सफल बनाने में हमारे साथ सक्रिय रूप से जुड़ गए हैं, इससे हमारा भार बहुत हलका हो गया है।

हमको खुशी है कि हमारे साथी श्री कुन्दन बैद इस ग्रन्थमाला की 15 पुस्तकों के लिए पन्द्रह ऐसे उदार और सहृदय दाताओं की खोज में लगे हैं, जो इनमें से एक-एक पुस्तक के प्रकाशन का सारा खर्च स्वयं उठा लेने को तैयार हों। इसमें भी पहल श्री कुन्दन बैद ने ही की है। त्याग और तप की बेल तो ऐसे ही खाद-पानी से फूलती-फलती रही है!

—काशिनाथ त्रिवेदी

गांव–पीपल्याराव
इन्दौर–452001

भूमिका

माता-पिता की शिक्षा

एक नया आयाम

बच्चा परिवार में यूं ही आ जाता है। प्रारब्ध से, संयोग से या कि दैवकृपा से। आमतौर से लड़का होने पर उत्सव मनाया जाता है, लड़की होने पर परिवार में गमी का-सा वातावरण छा जाता है। वैसे भारतीय परिवारों में दादी-नानी बच्चे के आने की पूर्व तैयारी करती हैं। दरअसल भारतीय मनीषा में बच्चों के आगमन के पूर्व के अवसर को सीमंतन संस्कार के नाम से जाना-पहचाना जाता है। यह एक सुनियोजित व्यवस्था परम्परा से चली आ रही थी और छोटे-मोटे रूप में यह परम्परा आज भी चल रही है। पर इस संस्कार का तात्त्विक अर्थ हम भूल चुके हैं। मात्र उत्सव आयोजित करने या अनुष्ठान-पूर्ति तक हमारी दृष्टि सीमित है।

पर बच्चे का आगमन अपने आप में एक अभूतपूर्व घटना है। बच्चा स्वयं अलौकिक तत्त्वों से आवेष्ठित अनोखा प्राणी होता है—प्रकृति के नैसर्गिक गुणों से परिपूर्ण, एक अद्भुत व्यक्तित्व का धनी। पर जो परिवार उसे प्राप्त करता है सबसे पहले उस पर अपना नाम चस्पा करता है, फिर अपनी मान्यताओं, परम्पराओं, रूढ़ियों को उस पर लादता है। उसे एक बंधे-बंधाये सांचे में समाहित करने का प्रयास जन्म के दिन से ही प्रारम्भ हो जाता है। शायद कोई नहीं सोचता और माता-पिता तो बिल्कुल ही नहीं सोचते कि बच्चे का जन्म ब्रह्माण्ड के निर्माण जैसी ही अलौकिक अभूतपूर्व घटना है और यह समझना तो और भी कठिन है कि प्रकृति की योजना में हर जीव, हर प्राणी भिन्न-भिन्न, पर अद्वितीय व्यक्तित्व का धनी होता है। बच्चा अपने आप में सम्पूर्ण होता है। सच्चाई यह है कि डिम्ब में वे सब गुण-सूत्र मौजूद होते हैं जो एक व्यक्ति के निर्माण की आधारभूमि होती है। प्राय: लोगों का आग्रह

होता है और बहुत से शिक्षाविद् भी इस दुराग्रह से पीड़ित होते हैं कि वे व्यक्ति का निर्माण कर सकते हैं। अनुकूल वातावरण से व्यक्ति में वांछित गुणों को प्रतिस्थापित किया जा सकता है। यहां तक कि वैज्ञानिक जैविक अभियांत्रिकी (Genetic Engineering) के क्षेत्र में ऐसे प्रयोग कर रहे हैं जिससे शायद एक ही गुणधर्म के बच्चे पैदा होना संभव हो सकेगा।

यह तो प्रकृति के विरुद्ध युद्ध छेड़ने जैसी बात होगी। हर जीव, प्राणी, यहां तक कि वनस्पति संसार के प्रत्येक सदस्य में विकास की संभावनाएं अन्तर्निहित होती हैं। विकास की एक अपनी सहज नैसर्गिक प्रक्रिया है। अलबत्ता ऐसा प्रबंध होना आवश्यक है कि यह नैसर्गिक क्रिया उपयुक्त वातावरण में निर्बाध रूप से चलती रहे। जिस प्रकार बाग का माली पेड़ पौधों की बड़ी लगन और जतन से सार-संभाल करता है कमो-बेश ऐसी ही तत्परता बच्चे के विकास के लिये अपरिहार्य है।

बच्चे का जन्म परिवार में होता है। वह अपना बाल्यकाल परिवार के मध्य व्यतीत करता है। अतः जाहिर है कि बच्चों की प्रारम्भिक देखरेख परिवार ही कर सकता है। माता-पिता का इसी वजह से पहला दायित्व होता है कि नव-आगंतुक शिशु के शारीरिक, बौद्धिक और संवेगात्मक विकास के लिये उपयुक्त वातावरण का निर्माण करे। वस्तुतः माता-पिता शिशु के पहले शिक्षक होते हैं। यही वजह है कि उपनिषदों में सबसे पहले माता-पिता की अर्चना करने का विधान बनाया है। गुरु की अर्चना को इस क्रम में तीसरा स्थान प्राप्त है। पर क्या मां-बाप इस तथ्य से परिचित होते हैं कि वे एक ऐसे व्यक्ति को संसार में लाने के माध्यम हैं, जो अनुपम है, बेमिसाल है। उसकी तुलना का कोई दूसरा व्यक्ति हो नहीं सकता। शायद ही कोई मां-बाप बच्चे के आगमन की पूर्व-तैयारी करता है और बच्चा पैदा होने के बाद उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व की कल्पना करना तो उनके लिये असंभव है। फिर वे कैसे समझें कि नवजात शिशु की भी अपनी आवश्यकताएं होती हैं। उनकी भी अपनी पसंद होती है। वे अपने ढंग से संसार को देखते-परखते हैं और स्वयं अपनी विश्वदृष्टि निर्मित करते हैं। लेकिन आम मां-बाप की दृष्टि में बालक नासमझ होता है। उसका अपना कोई स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं होता। यही

वजह है कि बच्चों की आवश्यकता के बारे में सोचने-समझने का पूरा दायित्व वे स्वयं ओढ़ लेते हैं और यहीं से बाल-विकास की सहज प्राकृतिक क्रिया में वे साधक होने की बजाय बाधक हो जाते हैं। बालक के जन्म लेते ही वे तय कर देते हैं कि उनका बालक बड़ा होकर अफसर बनेगा, इंजीनियर बनेगा, या कि डाक्टर बनेगा। और वे बचपन से ही उसे उसी मार्ग पर लगा देने का आग्रह करते हैं। इस ऊहापोह में वे बच्चों को अपने बालपन के सुख से न केवल वंचित कर देते हैं बल्कि उनके व्यक्तित्व में नाना प्रकार की विकृतियां पैदा कर देते हैं। बालपन के रंगीन और रहस्यमय संसार की झलक मां-बापों को तो खैर नसीब होती नहीं, पर वे अपने दुराग्रह में बच्चों को भी उस अलौकिक संसार के स्पर्श से वंचित कर देते हैं।

दरअसल मां-बाप बनना सहज है पर मां-बाप का कर्त्तव्य निभा पाना अपने आप में बड़ा जटिल है, दुरूह है। गिजुभाई नवयुवक-नवयुवतियों को संबोधित करते हैं, आगाह करते हैं कि विवाह पश्चात् उन्हें बच्चे रूपी नये स्थायी मेहमान की अगवानी करनी है पूरी तैयारी के साथ।

गिजुभाई देश के जाने-माने शिक्षक थे। पेशे से वकील होने के उपरान्त भी उन्होंने स्वयं शिक्षण किया। पाठशाला खोली। स्वानुभूत शिक्षण-अनुभव अर्जित किये और अपने अनुभवों को आने वाली पीढ़ियों के लिये लिपिबद्ध किया। अध्यापकों, अभिभावकों और बच्चों के लिये उन्होंने अपनी मातृभाषा गुजराती में 225 पुस्तकें लिखीं। **माता-पिता से** उनकी मूल पुस्तक का हिन्दी अनुवाद है। अनुवाद किया है श्री काशिनाथ जी त्रिवेदी ने, जिन्होंने गिजुभाई के शैक्षिक सिद्धान्तों को पूरे देश में प्रसारित करने का अनूठा काम हाथ में लिया है। 82 वर्ष की आयु में भी आप पूरी सक्रियता से हिन्दी भाषी पाठकों को गिजुभाई के साहित्य का आस्वादन करवाने के पुनीत कार्य में जुटे हैं।

प्रस्तुत पुस्तक **माता-पिता से** दरअसल मां-बापों की शिक्षा का उपक्रम करती है। बच्चों का शिक्षण होता है, और अध्यापकों का प्रशिक्षण भी होता है। हमें इसमें कोई आश्चर्य नहीं। पर क्या मां-बापों की शिक्षा भी

अपरिहार्य है ? क्या उन्हें भी बच्चे को विकसित करने का उचित प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये ? यह अपने आप में अद्‌भुत मान्यता है। गिजुभाई शिक्षकों के प्रशिक्षण से भी अधिक माता-पिता के प्रशिक्षण पर बल देते थे। प्रस्तुत पुस्तक इसका ज्वलंत प्रमाण है। शायद ही किसी शिक्षाशास्त्र में माता-पिता की शिक्षा (Parenthood Education) के महत्व को गहराई से प्रतिपादित किया गया हो।

प्रस्तुत पुस्तक में गिजुभाई माता-पिता को वैवाहिक जीवन से लेकर बच्चे के जन्म और प्रारंभिक काल में बालक की सार-संभाल के संबंध में सार्थक सलाह देते हैं। वे कहते हैं–'बालक का अपना चेतनायुक्त व्यक्तित्व होता है। वह स्वयं अपने रूप को गढ़ने वाला है। मां-बापों को चाहिये कि वे उसके इस कार्य में बाधक न बनें।' आज माता-पिता बालक के विकास में तरह तरह की बाधाएं उत्पन्न करते हैं। यही वजह है कि आज का युवक असंतुष्ट है। सच्चाई यह है कि 'युवक आज जैसा है, कल वह वैसा बालक था।' दरअसल माता-पिता को बच्चे के प्रति अपने दृष्टिकोण में मौलिक परिवर्तन करना होगा। उन्हें समझना होगा कि 'बालक न तो मिट्‌टी का पिण्ड है, और न मोम का लोंदा ही है कि हम उसको जैसी भी आकृति देना चाहें, वैसी शक्ल उसकी बन जायेगी।' वे माता-पिता को सलाह देते हैं–'बालक रूपी अतिथि का स्वागत करने के लिये हमको अपने मन से तैयार होना चाहिये। मतलब यह कि हमको जान लेना चाहिए कि छोटे बालक की खुराक क्या हो सकती है, उसके दांत आने लगें या वह बीमार पड़े तो हमको तात्कालिक उपाय क्या करने होंगे।'

बालक अपनी स्वक्रियाओं के बल पर शारीरिक, बौद्धिक और संवेगात्मक विकास करता है। ये बाल सुलभ चेष्टाएं नासमझी में प्रायः परिवार के लिये चिन्ता का कारण बनती है। तब आरंभ होता है अन्तर्द्वन्द्व। माता-पिता अपने बनाये रास्ते पर बच्चों को हांकना चाहते हैं। बच्चे की ओर से प्रतिरोध होने पर प्रायः 'सज़ा और इनाम' का सहारा लिया जाता है। इस परिप्रेक्ष्य में गिजुभाई की टिप्पणी मननीय है—'युवक माता

पिता समझ लें कि मारने-पीटने से या इनाम देने से बालक सुधर नहीं सकते। उल्टे वे बिगड़ते हैं। मार-पीट से बालक में गुण्डापन आ जाता है। इनाम के कारण उनकी बुद्धि व्यभिचारी बन जाती है। इन दोनों के कारण बालक गुलाम बन जाता है।' (पृ.25) बालक के विकास के लिये अनुकूल वातावरण निर्मित करने के महत्व को समझते हुए वे कहते हैं–'यदि हम अपने बालक को चाहते हैं तो किसी भी हालत में उसको बिगड़ने न दें। घर में नौकर रखकर हम अपने बालक को न बिगाड़ें। विदेशी खिलौनों की चकाचौंध से हम उसको न बिगाड़ें। शुरू से ही हिंसा का पाठ पढ़ाकर हम अपने बालक को पशु न बनायें।' (पृ.36)

'हम यह जरूर समझ लें कि बालक का सुख उसको अपने हाथों खाने देने में है। बालक का सुख उसको खुद ही चलने देने में है। बालक का सुख उसको खुद ही खेलने देने में है। बालक का सच्चा सुख सब कुछ स्वयं बालक को करने देने में है। इसमें नहीं कि कोई उसके सहज अधिकारों को उससे छीन ले।' (पृ. 38)

हमारे घरों का वातावरण बालकों के अनुकूल नहीं पड़ता। घर की बनावट, घर की वस्तुएं, घर के साजोसामान सभी कुछ तो वयस्कों की आवश्यकताओं के अनुसार होते हैं। 'हमारे घरों में ऐसी खूंटियां कहां हैं कि जिन तक बालक के हाथ पहुंच सकें। ऐसी टांड कहां है ? ऐसी अलमारी कहां है ? हमारे घरों में टांगी गई बढ़िया तस्वीरें बहुत ऊंचाई पर टंगी होती हैं। उनकी तरफ हमारा अपना ध्यान ही बहुत कम जा पाता जाता है। ऐसी स्थिति में उनका बालकों के लिये क्या उपयोग रह जाता है ?' (पृ. 47)

बालक की क्षमताओं पर, उसकी समझ पर हमारा विश्वास ही कहां होता है। 'क्या उसके काम के बरतन उसको उठाने देते हैं ? किसी को भोजन परोसने के मौके हम उसको कभी देते हैं ? क्या हम उनको दीयाबत्ती करने देते हैं ? क्या हम कभी उसको चूल्हा सुलगाने का काम सौंपते हैं ?' (पृ.48) 'अतः पहले तो यह समझना जरूरी है कि बालक की क्षमताएं असीम हैं। वे अपना काम खुद कर सकते हैं बल्कि खुद का काम करने में उन्हें अपार सुख मिलता है। जब ऐसी समझ विकसित होगी और हम बालक को घरों में

उचित स्थान देने लगेंगे तो हमारी इस पृथ्वी पर ही स्वर्ग के राज्य की स्थापना हो जाएगी (पृ.49)

बालक घर में क्या करें ? गिजुभाई ने इसकी एक लम्बी फेहरिस्त दी है। बच्चे कैंची से कागज को काटकर नानाविध आकृतियां निर्मित कर सकते हैं। दियासलाई की डिब्बियों, लकड़ी की ईंटों से वास्तुकला का पहला पाठ सीख सकते हैं। चित्र देखने का आनन्द प्राप्त कर सकते हैं और स्वयं भी चित्रकारी कर सकते हैं। मिट्टी के खिलौने बना सकते हैं। आलपिन और कागज की सहायता से तरह तरह की आकृतियां गढ़ सकते हैं। बागवानी कर सकते हैं। प्राणियों की परवरिश कर सकते हैं, नाटक खेल सकते हैं, फूल और पत्तियां इकट्ठी कर सकते हैं। रेत के घर थाप सकते हैं। वे क्या नहीं कर सकते ? आवश्यकता है तो इतनी कि हम उन्हें स्वतंत्रतापूर्वक वस्तुओं के संसर्ग में आने दें।

अपनी मान्यताओं को मूर्त रूप देने के ध्येय से गिजुभाई ने सन् 1920 में भावनगर में दक्षिणामूर्ति बाल मंदिर की स्थापना की थी। अभिभावक अपने बच्चों को उस बाल मन्दिर में दाखिला दिलवाने को आतुर रहते थे। एक ऐसी ही माता के पत्र के उत्तर में गिजुभाई ने 'माता-पिता की शिक्षा' के मौलिक सिद्धान्तों की व्याख्या प्रस्तुत की है। पुस्तक का यह अध्याय बाल शिक्षा में संलग्न अध्यापक और अभिभावक के रिश्तों को परिभाषित करता है। 'अपने बालक के बारे में आप हमारे साथ दिल खोलकर बात कीजिये। अपनी कठिनाइयां हमें बताइये और निडर होकर हमसे लड़िये। अपने बालक के बारे में आप भी हमसे कुछ छिपाइये मत। आप जितनी फिकर करेंगे बाल मंदिर को और बालक को उतना ही लाभ होगा। बालक को बाल मंदिर में भरती करा देने के बाद स्वयं निश्चिन्त होकर सो जाने की नीति को आप कभी मत अपनाइये।' (पृ. 93)

गिजुभाई की मान्यता थी कि माताएं बाल विकास की धुरी हैं। जानकार माताएं न केवल बच्चों की सार-संभाल बेहतर ढंग से कर सकती हैं बल्कि उनका बेहतर शिक्षण भी कर सकती हैं। यही वजह है कि पुस्तक का एक अध्याय माताओं को सम्बोधित है। बच्चों के लिये घर का सामान कैसा होना चाहिये। बालक क्या करना पसंद करते हैं। वे कैसे खेल खेलते हैं। बच्चों को कैसी पोशाक पहनानी चाहिये। कैसे स्वच्छ रखना चाहिये। उन्हें प्रतिकूल स्थितियों से बचाने के क्या उपाय हो सकते हैं। वे माताओं को हर स्थिति में हिंसा से बचने की सलाह देते हैं।

वस्तुतः गिजुभाई बालकों के हृदय की गहराइयों को माप सकने वाले पहले भारतीय-शिक्षाविद् थे। वे बालकों के मित्र, हितैषी और उनकी स्वतंत्रता के प्रबल पक्षधर थे। इस सदी के तीसरे दशक में परम्परा और रूढिग्रस्त भारतीय समाज में बालक की महिमा को प्रतिष्ठित करने वाले वे पहले व्यक्ति थे। **माता-पिता से** नामक प्रकाशित यह पुस्तक इसका प्रमाण है। विश्वास है कि इस पुस्तक के अनुशीलन से प्रत्येक व्यक्ति अपने आपको अधिक बालप्रेमी, बालकों का हितैषी बना सकता है। आखिर बच्चे को प्रेम कर सकने की क्षमता अर्जित करने पर ही हम सुखी और समृद्ध समाज की कल्पना कर सकते हैं न। नये समाज की कल्पना के ये सूत्र क्या हमें उद्वेलित नहीं करेंगे—

'नागों की पूजा का युग बीत चुका है।
प्रेतों की पूजा का युग बीत चुका है।
पत्थरों की पूजा का युग बीत चुका है।
मानवों की पूजा का युग बीत चुका है।
अब तो बालकों की पूजा का युग आया है।
बालकों की सेवा ही उनकी पूजा है।
नये युग का निर्माण कौन करेगा ?
जनजीवन के प्रवाह को कौन अस्खलित बनाये रखेगा ?
आने वाले युग का स्वामी कौन होगा ?' (पृ. 32)

बेशक बालक ही।

वरिष्ठ संपादक — **इन्द्रनारायण मूथा**
शिविरा, नया शिक्षक
बीकानेर 334001

गोद में

यह छोटी-सी पुस्तक आपकी गोद में रखते हुए मुझ को बहुत आनन्द हो रहा है। इस पुस्तक के लेख अलग-अलग समय में आप ही को ध्यान में रखकर लिखे गए हैं। इन लेखों में मैंने आपके सामने बालकों की वकालत की है। बालकों के दु:खों के बारे में शिकायतें की हैं। बालकों के सुख की याचना की है। मैं आशा करता हूँ कि आप इसका ध्यान रखेंगे।

बालकों का पक्ष लेते समय कभी आपको सिखावन दी गई हो, या आवश्यकता से अधिक कुछ कहा गया हो, तो आप उसका बुरा मत मानिए। पिछले अठारह सालों में मैंने बालकों की जो कंगाल हालत देखी है, और उनके साथ हो रहा जो बेहूदा बरताव देखा है, उसके दु:ख को मैं अपने दिल में छिपा नहीं सका हूँ, इसलिए कभी-कभी जो कुछ कठोर शब्द लिख गया हूँ, उनके लिए माफी माँगता हूँ।

बालकों के बारे में मुझ को इतनी अधिक बातें कहनी हैं कि कई पुस्तकें लिखकर भी मैं उनको कह नहीं सकूंगा। यह तो मैंने उसका आरम्भ-मात्र किया है। बालकों के और हम सबों के सौभाग्य से थोड़े ही समय में मैं अपने दूसरे अनुभव भी आपकी सेवा में प्रस्तुत करूंगा।

'बालकों की अपूर्णता और उसके उपाय' शीर्षक लेख अंग्रेजी से लिया गया है। ये उपाय समझदारी के साथ आजमाने लायक हैं।

आज तो इसको यहीं पूरा करता हूँ।

गिजुभाई

वैवाहिक जीवन की धन्यता कब समझ में आएगी?

जिस तरह बीज में वृक्ष है, उसके फूल हैं और फल हैं, उसी तरह बालक में सम्पूर्ण मनुष्य है।

युवावस्था बाल्यावस्था का विकास-मात्र है। बालक अवस्था का मध्याह्न युवावस्था है। काल-भेद से मनुष्य की सब अवस्थाएँ बालक की ही भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ हैं।

बालक मनुष्य-जाति का मूल है, और इस मूल से ही इसकी प्रगति का प्रवाह जीवन-लक्ष्य की दिशा में बहता रहता है।

बाल्यावस्था में यह प्रवाह बलवान होते हुए भी छोटा रहता है। यह मन्द बनता है। अलग-अलग प्रवाह-पट और अलग-अलग गति धारण करता हुआ प्रगति का यह प्रवाह अन्ततः तो सागर में ही जाकर मिलता है।

फिर भी बालक अब तक उपेक्षित रहा है, दुतकारा गया है, अपमानित हुआ है, भटकता रहा है।

आज का युवक, असन्तुष्ट युवक, अव्यवस्थित युवक, हाथ-पैर पीटता हुआ युवक, कल का दुतकारा हुआ, जहाँ-तहाँ फेंका गया और जैसे-तैसे गढ़ा गया बालक है! युवक आज जैसा है, कल वह वैसा बालक था।

आज के युवक को कोई दोष न दें। दोष उनको दिया जाना चाहिए, जिन्होंने बालकों को सताया है, जिन्होंने बालकों की बढ़ती हुई शक्ति को रोका है, और जिन्होंने उनकी कल्पना और क्रिया के विकास के मार्ग में रोड़े अटकाए हैं। जो लोग अपने ही संकीर्ण और क्षुद्र स्वार्थ में और जीवन के गोरखधन्धों में उलझे रहे, जो बालक को समझे ही नहीं, वे लोग ही आज

के पंगु युवक के, निःसत्व और निर्वीर्य युवक के निर्माता हैं, और इसी कारण वे आज के युवकों के द्रोही हैं। वे अपनी युवावस्था के चलते यौवन का आनन्द लूटने में बालक के लालन-पालन को भूल गए। अपने यौवन के काव्य में रमकर वे बालक के भव्य काव्य को न तो समझ सके, और न सुन ही सके। उन्होंने बालक के विकास में नहीं, उसकी माँ का विकास करने में अपनी सारी शक्ति खर्च कर दी। उसको देखते रहने में वे बालक को देखना भूल गए। उन्हीं ने हमको आज के युवक भेंट में दिए हैं, और आज के युवकों के जटिल प्रश्नों के लिए हम उन्हीं के आभारी हैं। अच्छा होता, यदि उन्होंने अपने बालकों की फिकर ली होती। उन्होंने अपनी जवानी के सुखों का उपभोग करते हुए भी बालक के सुख की खोज की होती, तो अच्छा रहता। अच्छा होता, यदि अपने सुखों की बलि देकर वे बालक के सुख के लिए खप गए होते। ऐसा हुआ होता, तो दुनिया बहुत पहले ही स्वर्ग की तरह सुखमय बन चुकी होती, और बालकों के लालन-पालन की अथवा युवकों की अपनी एक भी समस्या शेष रही न होती।

लेकिन यह सब तो हो चुका है। अब किसको उलाहना दिया जाए, और किसको न दिया जाए ? सवाल यह है कि अब किया क्या जाए ? कहाँ से शुरू किया जाए ? कौन शुरू करे ?

मैं कहूँगा कि हम बालकों से ही शुरू करें। बालकों के लालन-पालन से लेकर मनुष्यों के लालन-पालन का और उद्धार का काम हम अपने हाथ में लें। छोटी सुकुमार अवस्था से ही हम बाल-जीवन की सार-सँभाल शुरू करें, और बालक के विकास को सम्पूर्ण और शुद्ध रूप से गतिमान बनाएँ।

इस काम को कौन संभाले ? मैं कहता हूँ कि युवक सँभालें—निश्चित रूप से युवक ही सँभालें। वे युवक सँभालें, जिनके घर में बालक हैं। वे युवतियाँ सँभालें, जिनके घर में बालक हैं, माँ-बाप के रूप में युवक और युवती ही बच्चों के लालन-पालन के और उनके विकास के सच्चे अधिकारी हैं, और सच्चे ज़िम्मेदार भी हैं।

आज का युवक चारों तरफ़ से परेशान है। एक तरफ़ उसको पढ़ाई करनी है, दूसरी तरफ से पेट भी भरना है, और जिस पर प्रकृति ने और समाज ने

कृपा की है, उसको विशेष रूप से एक पत्नी का भरण-पोषण और संरक्षण करना है, एक या एक से अधिक बालकों के पोषण और शिक्षण की व्यवस्था भी करनी है। समाज ने और रूढ़ियों ने आज युवक को ऐसी स्थिति में ला पटका है, इसका परिणाम यह हुआ है कि इन चतुर्विध कठिनाइयों का सामना करने के लिए युवक को अपनी सारी शक्ति खर्च करनी होती है। इस सबके कारण वह बराबर अशक्त, निस्तेज और निराश बनता जा रहा है।

पुराने लोगों की यह बात उनके अपने अनुभव में से निकली लगती है कि अपनी पढ़ाई पूरी कर लेने के बाद ही युवक को गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना चाहिए। इससे यह बात आसानी से समझ में आ सकती है कि बाल-विवाह की प्रथा एक भयंकर-से-भयंकर कुप्रथा है। स्वावलम्बन की शिक्षा न मिलने के कारण ही आर्थिक तंगी भुगतते-भुगतते युवक कमज़ोर बनता जाता है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि स्वावलम्ब-विहीन शिक्षा एक निकम्मी शिक्षा है। यह परिस्थिति उन युवकों और युवतियों को एक बहुत ही क़ीमती सबक़ सिखाती है, जो वैवाहिक जीवन के सुखों की आकांक्षा रखते हैं। इससे उनको पता चल जाता है कि कितनी तैयारी के बाद उनको गृहस्थजीवन में प्रवेश करना चाहिए।

किन्तु आज क्या किया जाए ? आज अविवाहित युवकों और युवतियों को वैवाहिक जीवन के आनन्द से दूर रहना चाहिए। आज तक सारा दोष रूढ़ियों के मत्थे मढ़कर युवकों और युवतियों ने विवाह-व्यवस्था से लाभ उठाया है। यदि अब वे प्रेम के नाम पर झटपट ब्याह कर लेने की रूढ़ि को ही अपनाएंगे, तो वे आत्म वंचना ही करेंगे, और उनको इसके फल भोगने होंगे। स्त्री-पुरुष दोनों को अपने ब्याह के पहले ब्याह की तैयारी के काम में जुट जाना चाहिए। उनको समझ लेना होगा कि बालक उनके प्रेम का परिणाम और परिपाक होगा। बालक के लालन-पालन और पोषण-संवर्धन में उनको अपना सारा जीवन खपा देना होगा। जीवन को यज्ञ मान कर चलना होगा। प्रेम के माध्यम से बालक की सेवा को उत्सव का रूप देना होगा। इन सब बातों को समझ लेने के बाद ही उनको वैवाहिक जीवन की दिशा में क़दम रखने होंगे।

आज तो विवाह कुहरे में क़दम रखने के ढंग का एक काम है। अशुद्ध-शुद्ध भावना और छिपाए गए स्वार्थों से प्रेरित होकर युवक और युवतियाँ प्रेम के नाम पर ब्याह की जिस गाँठ से बंधते हैं, वह गाँठ कल ढीली करने या तोड़ने के लिए होती है। ब्याह की गाँठ के बन्धन दृढ़ रहें और यह दृढ़ता भावी पीढ़ी के संवर्धन और संस्कार के काम में खर्च हो, इसकी कल्पना कुछ ही लोगों को रहती है, और इसकी परवाह तो किसी को रहती ही नहीं।

इसलिए यह जरूरी है कि ब्याह करने से पहले युवक चेतें। स्वयं अपना भरण-पोषण करने में समर्थ होने पर भी चेतें। दोनों स्वस्थ, सशक्त और वयस्क होने पर भी चेतें। दोनों ब्याह तभी करें, जब वे बालकों का लालन-पालन करने योग्य बन जाएँ। जब बाल संगोपन की दृष्टि से वे अपने मन को और अपनी बुद्धि को तैयार कर लें।

आज बालक का जन्म एक आकस्मिक घटना-सा लगता है। नासमझ स्त्री-पुरुष को बालक अपने दाम्पत्य जीवन में विघ्न-रूप प्रतीत होते हैं। इसीलिए वे उनको अपने से दूर रखना चाहते हैं। वे नहीं चाहते कि बालक उनके बीच आएँ। वे बालक की क़ीमत को समझते ही नहीं, और समझना चाहते भी नहीं। दो बच्चों का छोटा परिवार भी आज के युवक-युवती के लिए बहुत कष्टप्रद बन गया है। जी का जंजाल-सा बन गया है।

लेकिन बालकों का जन्म कोई आकस्मिक घटना नहीं है। जिस हद तक ब्याह एक आकस्मिक घटना है, उसी हद तक बालकों का जन्म भी आकस्मिक कहा जा सकता है। अनजाने ही क्यों न हो, किन्तु बालक प्रकृति के सहज प्रेम और प्रेरणा की एक अनमोल देन है। दुनिया के सभी समझदार लोगों ने और माता-पिताओं ने इस ईश्वरीय देन को प्यार के साथ अपनाया है। फिर भी आज के युवक इससे घबराते हैं। अपनी शिक्षा-दीक्षा के कारण, और समाज और धर्म के क्षेत्र में बने विचित्र वातावरण के कारण, वे बालकों को बोझ-रूप मानने लगे हैं। इसके फलस्वरूप वे अपने बालकों के साथ अधोगति की दिशा में बढ़ते जा रहे हैं।

बालक तो हमारे जीवन-सुख की एक प्रफुल्ल और प्रसन्न खिलती हुई कली के समान हैं। वे माता-पिता के हृदय के पवित्र और निर्मल प्रतिबिम्ब हैं। किन्तु जहाँ-तहाँ से बटोरे हुए झूठे-सच्चे आदर्शों की खिचड़ी पकाकर खाने वाले माता-पिता अपने ही हृदयों को स्वयं पहचान नहीं पाते। वे अपने ही जीवन को संभाल लेने में लापरवाही बरतते हैं। वे खुद ही अपने आपको धिक्कारते हैं। खुद ही अपने बालकों की निन्दा करते हैं, उनको डाँटते-फटकारते हैं, उनसे झगड़ते हैं, और कभी-कभी यह भी कह बैठते हैं कि हायराम! अब इनसे छुटकारा कैसे पाया जाए? वे बालक को अपने काका, दादा या माता-पिता के हवाले करके सैर-सपाटे के लिए, घूमने-फिरने के लिए, मौज-मजा मनाने के लिए, पढ़ने और नाचने-कूदने के लिए घर के बाहर निकलना चाहते हैं, और इन सब कामों के लिए छटपटाते रहते हैं। किन्तु बालक कुंकुम् के पदचिह्नों के साथ घर में लक्ष्मी लेकर आए हैं। अपनी तोतली बोली के साथ वे जीवन-शास्त्र, शिक्षा-शास्त्र और प्रेममय जीवन की साक्षी लेकर आए हैं। इन सब बातों को देखने और समझने के बदले आज के युवक और आज की युवतियाँ उपन्यासों, नाटकों और सिनेमा-घरों में आनन्द को खोजती हैं। वे भाषणों, सभाओं और सम्मेलनों में सम्मिलित होती हैं, और दावतों में हाजिर रहने के लिए दौड़-भाग करती रहती हैं। और बालक बार-बार उनकी इन गतिविधियों में बाधक बनते हैं।

अभागे माता-पिताओं के अभागे बालक!

निःसन्देह, माता-पिताओं के लिए भी जीवन है, सुन्दर और प्रेममय जीवन है। होना भी चाहिए। किन्तु इस जीवन का केन्द्र बालक है, इस जीवन का काव्य बालक है, इस जीवन की सुगन्ध और सौंदर्य बालक है, और इस जीवन का सुख भी बालक ही है। अपने जीवन के सारे अरमान उनको अपने बालक के आसपास खड़े करने हैं। बालक के साथ जुड़ा हुआ प्रेम-जीवन प्रेम का घन स्वरूप है, शुद्ध और सात्विक स्वरूप है। क्योंकि उसमें त्याग का सुख समाया हुआ है।

लेकिन ऐसे जीवन के लिए तैयारी आवश्यक है, और यह तैयारी स्त्री अथवा पुरुष को कर लेनी चाहिए। विवाह-संस्था की सदस्यता स्वीकार करने

वाले इसकी अवगणना कर नहीं सकेंगे। बाह्य रूप में अवगणना करके आखिर वैवाहिक जीवन में प्रवेश करने वाले ग़लती के साथ पाप भी करेंगे। मन में निःसन्तान रहने की अभिलाषा रखकर कृत्रिम रीति से गृहस्थाश्रम चलाने वालों को अन्त में बालकों के लिए तरसना पड़ेगा, और जब कृत्रिमता के प्रायश्चित्त के रूप में उनको वन्ध्यत्व प्राप्त होगा, तब वे अपने को ही शाप देंगे।

इस स्थिति के आने से पहले ही हर एक युवक और युवती को चाहिए कि जिस तरह वे शरीर-शास्त्र का, इतिहास, भूगोल, पाक-शास्त्र और आभूषण-कला आदि का परिचय प्राप्त कर लेते हैं, उसी तरह वे बालकों के लालन-पालन की विधि का और शिक्षा-शास्त्र का भी ज्ञान प्राप्त कर लें।

कई लोग इसमें शरम महसूस करते हैं, लेकिन वह झूठी शरम है। जिस तरह आगे किसी के बीमार पड़ने का ध्यान रखकर नर्स का काम सीखने में शरम नहीं है, जिस तरह आगे कभी काम आने वाली कोई विद्या सीखने में शरम नहीं है, उसी तरह बाल-संगोपन की विद्या सीख लेने में कोई शरम होनी नहीं चाहिए।

अब हम यह सोचें कि किसी भी युवक या युवती को माता-पिता बनने के लिए क्या तैयारी करनी होगी? क्या-क्या पढ़ लेना होगा? घर कैसे तैयार करना होगा? खुद अपने को और अपने शरीर और मन को किस तरह तैयार कर लेना होगा? और अन्त में, अपने आसपास का सारा वातावरण कैसा बना लेना होगा?

जब हमारे घर में कोई मेहमान आता है, तो उसके लिए हम थोड़ी जरूरी तैयारी कर लेते हैं। यह तैयारी तात्कालिक ही होती है। इसमें किसी को कोई आपत्ति भी नहीं होती। लेकिन हमारे घर में जो स्थायी मेहमान आने वाला है, उसके लिए तो हमको लंबी और स्थायी तैयारी की आवश्यकता होती है। यह तैयारी हमको सोच-समझकर सम्मान-पूर्वक करनी चाहिए। यह मेहमान हमारा एक अंग है, हमारे वंश की बेल को बढ़ाने वाला है, हमारे कुल का दीपक है, यह मनुष्य-जाति के पुनीत पदचिह्नों को अनन्त विकास की दिशा में आगे बढ़ाने वाला एक व्यक्ति है। हमें इन सब बातों का ध्यान रहना चाहिए, और इसके लिए हमारी तैयारी भी भव्य होनी चाहिए।

हर एक युवक और युवती और कुछ नहीं, तो कम-से-कम यह सोचकर ही अपने शरीर को स्वस्थ और सुदृढ़ बना ले कि यही शरीर फिर उसके घर में जन्म लेने वाला है। माता-पिता का शारीरिक स्वास्थ्य जैसा होगा, बालक भी वैसे ही बनेंगे। यही नहीं, बल्कि शारीरिक स्वास्थ्य से सुखी माता-पिता ही अपने बालकों की अच्छी सार-सम्भाल कर सकेंगे, और खुद भी बालकों के सुख का आनन्द लूट सकेंगे। आज की अस्वस्थ और दुर्बल माताओं के लिए बालक भार-रूप और दुःख-रूप बन जाते हैं। भले ही हम इस दुःख से दुःखी हो लें, लेकिन इस दुःख के लिए ज़िम्मेदार तो माता-पिता ही हैं।

अपना वैवाहिक जीवन शुरू करने के बाद भी माता-पिता अपने शरीर को सम्भाल कर शारीरिक सुखों का उपभोग करेंगे, तो वे बालक के लिए आशीर्वाद-रूप बन सकेंगे। जो अपनी प्राण-शक्ति को बिना सोचे-समझे अधिक खर्च करते रहेंगे, या बरबाद कर डालेंगे, उनको अपने जीवन के आनन्दपूर्ण दिन कम कर लेने होंगे। सुख का उपभोग करने के लिए भी सुख का संयमित उपभोग आवश्यक है।

बालक-रूपी अतिथि का स्वागत करने के लिए हमको अपने मन से भी तैयार होना चाहिए। मतलब यह है कि हमको यह जान लेना चाहिए कि छोटे बालक की खुराक क्या हो सकती है, उसके दांत आने लगें या वह बीमार पड़े, तो हमको तात्कालिक उपाय क्या करने होंगे, बालक के बोलना सीखने का समय कब आता है, और उस समय हम किस तरह उसकी मदद कर सकते हैं, अपना विकास करने की उसकी रीति क्या है, और उस रीति में हम उसको कितना संरक्षण दे सकते हैं, किस हद तक उसकी मदद कर सकते हैं, आदि-आदि। हमको जानना चाहिए कि बालक की अपनी शक्ति क्या है, उसको किस प्रकार के शिक्षण की आवश्यकता है, और वह अपने मन का कैसा विकास चाहता है। हमको जान लेना चाहिए कि बालक की कल्पना-शक्ति, क्रिया-शक्ति, प्रेरणा और स्वयं चेतना आदि की स्थिति क्या है और कैसी है। हमको यह सब जानना होगा। लोग इसको मानस-शास्त्र कहते हैं। इस मानस-शास्त्र के बाल-शिक्षा-सम्बन्धी सामान्य सिद्धान्तों का ज्ञान हर एक माता-पिता को प्राप्त कर ही लेना है। इसके लिए उनको इस विषय की

पुस्तकें पढ़नी चाहिए। बालकों के पालन-पोषण में लगे विद्यालयों और परिवारों में जाकर सब कुछ देखना-समझना चाहिए।

मां-बापों को बालकों के बारे में फैली हुई अनेक गलत धारणाओं को शुद्ध कर लेना होगा। अगर नई पीढ़ी के युवक और युवतियाँ भी पुराने अन्धविश्वासों और तौर-तरीक़ों के बीच ही अपने बालकों का पालन-पोषण करेंगी, तो इस दुनिया के लिए आगे बढ़ने की कोई आशा नहीं रह जाएगी। युवक और युवती अपने को प्रगतिशील मानते भी होंगे, तो भी उनका वह भ्रम लम्बे समय तक टिक नहीं सकेगा।

बालकों के पालन-पोषण और शिक्षण के विषय में भी अनेक गलत धारणाएँ प्रचलित हैं। आज के हमारे युवक-युवती देवी-देवताओं की मनौतियों से चाहे बचे हों, लेकिन बच्चों के पालन-पोषण की जंगली रीतियों और रूढ़ियों से बचना बहुत मुश्किल है। नए माता-पिता भी अपने बालकों का पालन-पोषण उन्हीं ग़लत रूढ़ियों और रीतियों से करना चाहेंगे। अतएव ऐसा समय आने से पहले वे ज्ञान-पूर्वक यह समझ लें कि बालक स्वयं अपना विकास करते रहने की अद्‌भुत चेतना-शक्ति के स्वामी होते हैं।

बालक की आत्मा स्वतन्त्र है, और वह अपने निश्चित ध्येय की दिशा में आगे बढ़ना चाहती है। वह हम से यह आशा रखती है कि हम उसको उसके इष्ट कार्य के लिए अनुकूल परिस्थिति दें और निर्विघ्नता दें।

नए माता-पिता समझ लें कि बालक न तो मिट्टी का पिण्ड है, और न मोम का ऐसा लौंदा ही है कि हम उसको जैसी भी शक्ल देना चाहें, वैसी शक्ल उसकी बन जाए। बालक का अपना एक चेतन-युक्त व्यक्तित्व होता है। वह स्वयं ही अपने रूप को गढ़ने वाला है। अपनी प्रकृति के गुण-धर्म के अनुसार वह अपने को गढ़ भी सकता है। मां-बापों को चाहिए कि वे उसके इस कार्य में बाधक न बनें। बल्कि बालक की सारी गतिविधियों का सूक्ष्म अवलोकन कर के वे जहाँ भी उसे ज़रूरत हो, वहाँ उसकी मदद के लिए उसके आस पास बन रहें।

युवक माता-पिता समझ लें कि मारने-पीटने से या इनाम देने से बालक सुधर नहीं सकते, उलटे वे बिगड़ते हैं। मार-पीट से बालक में गुण्डापन आ जाता है। इनाम के कारण उसकी बुद्धि व्यभिचारी बन जाती है। इन दोनों के कारण बालक गुलाम बन जाता है।

जिस तरह नए माता-पिता अपने लिए सच्ची स्वतंत्रता चाहते हैं, उसी तरह बालक भी अपने लिए स्वतंत्रता चाहता और माँगता है। बालक भी माता-पिता की, उनके आचार-विचार की और उनकी कुल-परम्परा की बेड़ियों से छूट जाना चाहता है। माता-पिताओं को चाहिए कि वे उसको इन बेड़ियों से मुक्त कर दें।

संक्षेप में, बालक, जो हमारे लाडले और महँगे मेहमान हैं, हम से सच्ची स्वतंत्रता की, सहानुभूति-युक्त सहायता की और बाल-विकास से सम्बन्धित प्रयोग-सिद्ध ज्ञान की आशा रखते हैं। हम अपने को इसके लिए तैयार कर लें।

जब अपनी ऐसी तैयारी के साथ हम बालकों के आगमन के लायक बन कर उनके स्वागत के लिए उनकी बाट देखते हुए खड़े रहेंगे, तो निश्चय ही हमारे घरों में विभूतियाँ जन्म लेंगी, हमारे वातावरण में वे अपना अद्‌भुत विकास करेंगी और हमारा और हमारे समय की दुनिया का कल्याण करेंगी।

तभी हम अपनी जवानी की, अपने गृहस्थ-जीवन की, और अपनी गृहस्थी के सुख की धन्यता को समझ सकेंगे!

•

बाल-महिमा

बालक प्रभु की अनमोल देन है।

बालक प्रकृति की सुन्दर-से सुन्दर कृति है।

बालक समष्टि की प्रगति का एक अगला क़दम है।

बालक मानव-कुल का विश्राम है।

बालक प्रेम का पैग़म्बर है।

बालक मानस-शास्त्र का मूल है।

बालक की पूजा तो प्रभु की पूजा है।

बालक को प्यार देकर आप दुनिया को प्यार दे सकेंगे।

बालक को प्रेम देकर आप प्रेम का रहस्य समझ सकेंगे।

प्रभु को पाना हो, तो बालक की पूजा कीजिए।

यदि परमात्मा ने कोई अति निर्दोष वस्तु उत्पन्न की है, तो वह बालक ही है।

बालक के पास रहने का मतलब होता है, निर्दोषता के साथ रहना।

माताओं और पिताओं!

क्या कभी आपने बालक की सुन्दर और सलोनी हँसी देखी है?

क्या कभी आपने अपने सारे दुःखों को उस हँसी में विलीन होते देखा है?

क्या आप जानते हैं कि जब बालक खिलखिलाकर हँसता है, तो उसके मुंह से नन्हें-नन्हें फूल झड़ते रहते हैं?

क्या आप समझते हैं कि बालक को भोजन कराते समय आप स्वयं कैसी-कैसी बाल-लीलाएँ करते हैं?

क्या बड़ी-से-बड़ी क़ीमत मिलने पर भी आप कभी ऐसी बाल-लीलाएँ करना पसन्द करेंगे?

यदि कभी आप अपने इस स्वर्गीय पागलपन का विचार करने बैठेंगे, तो तनिक सोचिए कि अपने बारे में आप स्वयं क्या सोचेंगे?

आपके शोक को कौन भुलाता है?

आपकी थकान को कौन मिटाता है?

आपको बाँझपन के कलंक से कौन बचाता है?

आपके घर को किलकारियों से कौन भर देता है?

माँ को गृहणी कौन बनाता है?

जीवन के संग्राम में पिता को जंगबहादुर कौन बनाता है?

क्या आप जानते हैं कि कभी किसी माता या पिता ने अपने बालक को बदसूरत कहा है?

जब बालक, बालक न रह कर आदमी बनता है, तभी वह बदसूरत बन जाता है। बदसूरत आदमी या बदसूरत औरत का मतलब है, विकृत बालक।

जो व्यक्ति बालक के साथ खेल नहीं पाता, क्या वह कभी सहृदयता का दावा कर सकता है?

बालक को देखते ही आप उसको गोद में न उठा लें, तो आपका यह दम्भ, कि आप बाल-प्रेमी हैं, एक क्षण के लिए भी ठिटक नहीं सकेगा।

प्रेम के मामले में कहीं और दम्भ चल सकता है, पर बालक के पास कभी नहीं चल सकता।

बालक तो प्रेम का दर्पण है।

राजा हो या रंक, मूर्ख हो या विद्वान, ग़रीब हो या अमीर, बालक के सामने कौन नहीं झुका है?

कौन है कि जो बालक का प्रेम पाने के लिए उसके सामने अपना सिर झुकाता न हो !

जब बालक बिना दाँतों वाला अपना नन्हा-सा मुँह खोलता है, तो ऐसा मालूम होता है, मानों गुलाब का फूल खिल रहा हो !

जब बालक सुबह उठता है, तो उसको यह सारी दुनिया नई-नई-सी लगती है।

दुनिया को भी बालक रोज़-रोज़ नया ही दीखता है।

रोज़ सवेरा होता है, और रोज़ माँ की गोद में एक कमल खिलता है।

जाड़ों की सारी रात माँ से चिपककर और माँ की गोद में दुबक कर सोने और बैठने वाला बालक माँ को कितना मीठा लगता होगा ?

बालक माँ के प्रेम के कारण ज़िन्दा रहता है, या माँ बालक की मिठास के कारण ज़िन्दा रहती है ?

जब बालक अपने नन्हे-नन्हे पाँव हिलाता है, क्या उस समय हम यह सोचते हैं कि इस तरह वह कितनी कसरत कर लेता है, और हवा में कुल कितना चल लेता है ? या हम उसकी इस क्रिया को देखने में ही तल्लीन हो जाते हैं ?

घुटनों के बल चलने के लिए बालक जो प्रयत्न करता है, और दुनिया की बादशाहत पाने के लिए एक सुलतान जो कोशिश करता है, क्या इन दोनों में हमको कोई फ़र्क़ मालूम होता है ?

बालक का प्रयत्न कितना सहज और निर्दोष होता है, और सुलतान के प्रयत्न कितने सदोष और भयंकर होते हैं ?

नागों की पूजा का युग बीत चुका है।

प्रेतों की पूजा का युग बीत चुका है।

पत्थरों की पूजा का युग बीत चुका है।

मानवों की पूजा का युग भी बीत चुका है।

अब तो

बालकों की पूजा का युग आया है।

बालकों की सेवा ही उनकी पूजा है।

नए युग का निर्माण कौन करेगा ?

जन-जीवन के प्रवाह को कौन अस्खलित बनाए रखेगा ?

आने वाले युग का स्वामी कौन बनेगा ?

भूतकाल की समृद्धि को और वर्तमान की विभूति को भविष्य की गोद में कौन रखेगा ?

बालक के कोश में 'निराशा' शब्द है ही नहीं।

चलना सीखने की कोशिश में लगे बालक को देखिए।

क्या वह कभी थकता है ?

उसका उद्योग और उसकी लगन किसको अनुकरणीय नहीं लगेगी ?

जब बालक चलने की कोशिश करते हुए गिरता है, तो कोई उसे मारता क्यों नहीं है ?

उसे हारते देखकर भी हमें हँसी क्यों आती है ?

क्या किसी तरह का कोई इनाम या लालच देकर हम बालक को हँसा सकते हैं ?

हँसी बालक की बड़ी-से-बड़ी मौज है ?

बालक की हँसी घर और दिल दोनों को उजाले से भरती रहती है।

सोए हुए बालक की हँसी परियों के पंखों के प्रकाश की चमक-जैसी होती है।

दो होठों के खुलते ही बालक की मीठी हँसी पूरे विश्व में छा जाती है।

काली अन्धेरी रात में भी बालक की हँसी से माँ का सारा भय भाग खड़ा होता है।

कहीं बालक की हँसी में अमृत तो नहीं भरा है !

लगता है कि माँ इस अमृत से ही सदा तृप्त बनी रहती होगी।

जब बालक आधी रात में जागता है तो उसके साथ घर के सब लोग भी आधी रात में जाग उठते हैं।

जब जागकर बालक खेलने लगता है, तो घर के लोग भी उसके साथ खेलने में लीन हो जाते हैं।

बालक के हँसने पर सब हँसते हैं।

बालक के साथ बूढ़े भी हँसने का आनन्द लूट लेते हैं।

बड़े बालक छोटे बालकों के साथ हँसकर अपने बचपन की याद को ताजा कर लेते हैं।

नौजवान लोग बालक की हँसी में नहाकर अपने प्रेम-जीवन की तैयारी करते हैं।

माता-पिता तो बालक की हँसी में अपने नए जन्म का आनन्द लूटते रहते हैं।

बालक देवलोक के भूले-भटके यात्री हैं।

बालक तो गृहस्थों के अनमोल मेहमान हैं।

जब इन मेहमानों की सही सेवा-सुश्रूषा नहीं हो पाती, तो सारा गृहस्थाश्रम ही चौपट हो जाता है।

लक्ष्मी बालक के कुंकुम् के-से लाल-लाल पैरों से ही चिपकी रहती है।

बालक के प्रफुल्ल मुख में प्रेम सतत समाया रहता है।

बालक की मीठी हँसी वाली मधुर नींद में शान्ति और गम्भीरता छिटकी रहती है।

बालक की तोतली बोली में कविता बहती रहती है।

खेद इसी बात का है कि वह दिव्य कविता मनुष्यों की इस दुनिया में लम्बे समय तक टिक नहीं पाती है।

कभी आपने सुना है कि किसी ने बालक की बातों में व्याकरण की भूलें खोजी हैं ?

बालक के साथ बात करते समय तो बड़े लोग भी खुशी-खुशी व्याकरण के कठोर नियमों को त्याग देते हैं, और अकसर व्याकरण-विहीन भाषा बोलने के विफल प्रयत्न करते हैं।

जब से बालक व्याकरण-सम्मत बोली बोलने लगता है, तबसे उसकी बोली की मिठास घटने लगती है।

जिनको बालक प्यारा न लगता हो, वे तो ईश्वर के निरे शत्रु ही हैं।

बालक को 'गन्दा' कहकर उसकी ओर न देखने वाले लोग अभागे नहीं हैं, तो और क्या हैं ?

बालक तो इन अभागों की तरफ भी अपने हाथ फैलाता ही है।

हब्शी को तो अपने बच्चे प्यारे लगते ही हैं, किन्तु जो प्रभु-प्रेमी होते हैं, वे हब्शी के बच्चों से भी प्यार करते हैं।

कई लोग बच्चों से दूर ही दूर रहना चाहते हैं।

भला, हम उनको पामर न कहें, तो और क्या कहें ?

बालक माता-पिता की आत्मा है।

बालक घर का आभूषण है।

बालक आँगन की शोभा है।

बालक कुल का दीपक है।

बालक तो हमारे जीवन-सुख की प्रफुल्ल और प्रसन्न खिलती हुई कली है।

यदि आप शिक्षक बनना चाहते हैं तो आप बालकों का ही अनुसरण कीजिए।

यदि आप मानस-शास्त्री बनना चाहते हैं, तो आप बालकों का ही अवलोकन कीजिए।

बालक तो पल-पल में जीवन-शास्त्र और मानस-शास्त्र के सिद्धान्तों को व्यक्त करता रहता है।

तत्त्वज्ञानी लोग भी बालक में ब्रह्माण्ड के दर्शन कर सकते हैं।

जब बालक अपनी नन्हीं आँखों से हमारी तरफ देखता है, तो आखिर वह क्या देखता होगा ?

क्या उसकी आँखों का प्रकाश हमारे अन्दर कोई प्रकाश नहीं फैलाता होगा ?

आप बालक के पास आधा घण्टा ही रह लीजिए, और बिल्कुल ताजे-तगड़े बन जाइए।

ऐसा लगता है, मानो बालक आराम और विश्राम का कोई उपवन हो।

•

अपने बालकों की भलाई के लिए

अपने बालकों की भलाई के लिए हम क्या करेंगे ?

यह एक और नया सवाल ! भला, अपने बालकों के लिए हम क्या नहीं करते हैं कि हमसे ऐसा सवाल पूछा जाता है ?

हम अपने बालक को खिलाते-पिलाते हैं। हम उसको खेलाते हैं और भोजन कराते हैं। हम उसको पहनाते-ओढ़ाते हैं। पाठशाला में भेजकर हम उसको पढ़ाते-लिखाते हैं। उसके लिए हम पैसा इकट्ठा करते हैं। इतना सब करने के बाद भी हमसे ऐसा सवाल क्यों पूछा जा रहा है ?

आइए, इस सवाल के बारे में हम थोड़ी गम्भीरता के साथ विचार करें।

अपने बालक के लिए हम इतना काम तो करें ही करें।

बालक को हम बेढंगे कपड़े न पहनाएँ। हम उसको गहनों से न सजाएँ। हम उसको साफ़-सुथरा तो रखें ही रखें।

अपने बालक को बुरी पुस्तकों और बुरी सोहबत से हम बचा लें। हम उसको प्राणघातक पाठशाला से ज़रूर ही हटा लें।

किसी भी हालत में, अपने बालक को, कभी किसी भी तरह की, कोई सजा हम न दें।

क्या अपने बालकों की भलाई के लिए हम इतना काम भी नहीं करेंगे ?

क्लब में जाना छोड़कर क्या हम उनको बगीचे में घुमाने नहीं ले जाएँगे ?

अपने मित्रों से मिलना-जुलना छोड़कर क्या हम अपने बालकों को अजायबघर और बाज़ार दिखाने नहीं ले जाएँगे ?

कुछ देर के लिए अखबार पढ़ना छोड़कर क्या हम अपने बालकों की प्यार-दुलार-भरी बातें नहीं सुनेंगे ?

कुछ देर के लिए अपने धन्धे की बातें भुलाकर और अपनी पढ़ाई को एक तरफ रखकर क्या हम अपने बालकों को मीठी-मीठी बातें कहकर सुलाना पसन्द नहीं करेंगे ?

कुछ देर के लिए अपने मन की थोथी तरंगों को और अपनी आराम-पसन्दी को छुट्टी देकर क्या हम अपने बालकों को छोटे-छोटे गीत नहीं सुनाएँगे ?

यदि सचमुच हम अपने बालकों को चाहते हैं, तो हम नीचे लिखे काम हरगिज़ न करें !

हम उनको टोकें नहीं। हम उनका अपमान न करें। भोजन के समय तो हम उन पर कभी नाराज़ हों ही नहीं। किसी भी हालत में सोते समय तो हम अपने बालक को कभी रुलाएँ ही नहीं।

भोजन के समय हम बालक के आनन्द का ही विचार करें। सोते समय हम बालक के सुखमय सपनों की ही बातें सोचें। घर में जो भी बना हो, और बालक को जो भी रुचता हो, सो उसको तब तक खाने दीजिए, जब तक वह खाना चाहे ! जब तक बालक अपनी मौज के साथ खेलना चाहे, उसको खेलने दीजिए !

बालक को यह कहते रहने से क्या फ़ायदा कि वह यह चीज़ खाए और वह चीज़ खाए ?

रात अपने बालक को चपत मारकर सुला देने से हम कौन बड़ी कमाई कर लेते हैं ?

अपने विलास के लिए आपका पाप-पूर्ण जागरण मूल्यवान है, अथवा अपने बालक के निर्दोष आनन्द के लिए किया गया आपका पवित्र जागरण मूल्यवान है ?

नींद लाने वाली गोली खिलाकर आप अपने बालक को क्यों सुलाते हैं ? क्या इसलिए कि वह आपके आनन्द में बाधक बनता है ?

यदि आपको आराम और विलास का ही सुख लूटना था, तो आपसे किसने कहा था कि आप बालक को अपने बीच बुलाएँ ? क्या बालक का आपके बीच आना कोई आकस्मिक घटना-मात्र है ?

बालक का रात में जागना कई माँ-बापों को अच्छा नहीं लगता।

क्यों ? क्या इसके कारण उनको रात में बहुत जागना पड़ता है ? नाटक, सिनेमा, चौपड़, शतरंज अथवा ताश के कारण होने वाले जागरण का हिसाब किससे पूछा जाए ?

किन्तु किसी को कुछ पता भी है कि बालक तो अनन्त में रमा रहता है ?

बालक के आनन्द के लिए तो क्या दिन और क्या रात, क्या सुबह, दोपहर और शाम, सब कुछ समान ही है !

जिस दिन से हम बालक नहीं रहे, उसी दिन से हमारे जीवन में रात का घना अंधेरा छाया हुआ है।

बालक को तो घनी अंधेरी रात में भी उजाला नज़र आता है। इसके विपरीत, अज्ञानी और पापी हृदय में दिन के उजाले में भी घना अंधेरा छाया रहता है।

निर्दोष हृदय ही अंधेरे में उजाले का दर्शन कर पाता है।

अपने बालकों के हित को ध्यान में रखकर हम नीचे लिखे काम हरगिज़ न करें :

हम अपने पड़ोसी से लड़ें-झगड़ें नहीं। हल्के स्वभाव वाले पड़ोसियों से हम हजार हाथ दूर रहें। ओछे स्वभाव के अपने मित्रों का साथ हम छोड़ दें। दुष्ट स्वभाव के अपने भाई-बहनों को या ऐसे दूसरे सगे-सम्बन्धियों को भी हम दूर से ही नमस्कार करें।

अपने परिवार में से दुर्गुणों को दूर करने के लिए उनके विरुद्ध युद्ध छेड़ने में हम ज़रा भी न डरें।

अपने दोषों को दूर करने के लिए हम हठ योग का सहारा लें। और, यदि बालक को हानि पहुंचती हो, तो उसकी माता के त्याग को भी हम अधर्म न मानें। अपने घर में बालक के लिए हमको स्वर्ग की रचना करनी हो, तो उसके निमित्त से हम कठिन-से-कठिन आत्मबलि देने से भी न हिचकिचाएँ!

यदि हम अपने बालक को चाहते हैं, तो किसी भी हालत में हम उसको बिगड़ने न दें। घर में नौकर रखकर हम अपने बालक को न बिगाड़ें। विदेशी खिलौनों की चकाचौंध से हम उसको न बिगाड़ें। शुरू से ही हिंसा के पाठ पढ़ाकर हम अपने बालक को पशु न बनाएँ।

क्या हम अपने बालकों को मुक्त नहीं करना चाहते—अपने विश्वासों की बेड़ियों से, अपने एकांगी आदर्शों से, अपने को प्रिय पढ़ाई के बन्धनों से, ख़ुशी-ख़ुशी अपने गले में डाली रूढ़ियों की जंजीरों से, शिष्टाचार की जड़ता से, और परतंत्रता या पराधीनता के पाश से?

एक बार अपने समाज की अत्याचारपूर्ण दासता से हम स्वयं मुक्त हो लें, और फिर अपने बालकों को भी उस दासता से मुक्त करा लें। आप यह तो जानते ही हैं न कि ग़ुलाम आदमी का बालक तो आखिर ग़ुलाम ही बनेगा?

आइए, हम फिर सोचें कि अपने बालकों की भलाई के लिए हम और क्या-क्या करें?

जो आज बालिका है, कल वही गृहिणी बनेगी। जो आज बालक है, कल वही नागरिक बनेगा।

इनके लिए हम क्या करें?

आज ये हमसे जो कुछ सीखेंगे, कल ये वैसा ही आचरण करेंगे।

आज हम जो नहीं करेंगे, आने वाले समय में इनसे वह हो ही नहीं पाएगा।

आज हम जिस चीज़ का त्याग करेंगे, उसका त्याग करना ये ज़रूर सीख लेंगे।

आइए, हम फिर सोचें कि अपने बालक के हित के लिए हम को और क्या करना है?

बालक हमारा भावी नागरिक है। भावी नागरिक का बीज बालक में मौजूद है। जैसा हमारा बालक होगा, वैसा हमारा भावी नागरिक बनेगा।

आइए, हम सोचें कि अपने ऐसे बालक के लिए हमको क्या करना चाहिए।

बालक भावी कुल का दीपक है।

बालक भावी पीढ़ी का प्रकाश है।

बालक भावी जनता का पैग़म्बर है।

अपने ऐसे बालक के लिए हम क्या करेंगे?

भगवान ने हमको बालक इसलिए दिया है कि उसको पाकर हम अपने जीवन को प्रकाशित कर लें।

नया जीवन जीने के लिए भगवान ने हमको बालक दिए हैं।

हमारे अन्दर नई चेतना जगाने के लिए भगवान ने हमको बालक दिए हैं।

कल्याण के पथ पर आगे बढ़ने के लिए भगवान ने हमको बालक दिए हैं।

स्वयं भगवान ने हमको जो बालक दिए हैं, उन बालकों के लिए हमको क्या-क्या करना चाहिए?

हम सोचें कि बालक का सुख किन बातों में है।

हम यह जरूर समझ लें कि—

बालक का सुख उसको अपने ही हाथों खाने देने में है। कोई उसको खिला दिया करे, इसमें बिलकुल नहीं।

बालक का सुख उसको खुद ही चलने देने में है। उसको गोद में उठा लेने में हरगिज़ नहीं।

बालक का सुख उसको खुद ही खेलने देने में है। उसको खेलाने में हरगिज़ नहीं।

बालक का सुख उसको खुद ही गाने देने में है। इसमें नहीं कि कोई उसके सामने गाए, या उसको गाने के लिए कहे।

बालक का सच्चा सुख सब कुछ स्वयं बालक को ही करने देने में है। इसमें नहीं कि कोई उसके सहज अधिकारों को उससे छीन ले।

•

घर में बालक का स्थान क्या है ?

घरों में रोज़ रसोई किसको पूछकर बनती है ?

कितनी माताएँ हैं, जो रसोई बनाते समय इस बात का विचार करती हैं कि बालक को उनकी बनाई चीजें रुचेंगी या नहीं ? उसको वे पचेंगी या नहीं ?

अगर बालक को कोई चीज़ रुचती नहीं हैं, तो हम कहते हैं कि वह खाना जानता ही कहाँ है ? उसको स्वाद का कोई भान ही कहाँ है ?

अगर बालक को कोई चीज़ तीखी लगती है, और वह उसको खाने से इनकार करता है, तो हम कहते हैं कि तीखी चीज़ें खाने की आदत तो उसको डालनी ही चाहिए ?

हमको खारी और खट्टी चीज़ें अच्छी लगती हैं, तो हम चाहते हैं कि बालक भी खारा-खट्टा खाए ? हमको भात अच्छा लगता है, तो हम भात की और शाक अच्छा लगता हो, तो शाक की हिमायत करते हैं।

बालक को हमारा हुक्म मानना ही चाहिए, क्योंकि हमारा शरीर बालक के शरीर से बड़ा है। लेकिन हमको इससे भी सन्तोष कहाँ होता है ? हम तो चाहते हैं कि बालक हमारी आदतों को, हमारे शौक़ों को और हमारी पसन्द को खुद ही अपना ले।

बालक से हमारी अपेक्षा यह रहती है कि हम जिस तरह बैठते हैं, बालक भी उसी तरह बैठना सीख ले। हम जिस तरह बोलते हैं, बालक भी उसी तरह बोले। तभी यह माना जाएगा कि हां, वह बोलना जानता है। हम जो खाते हैं, अगर बालक उसको न खाए, तो कैसे माना जाए कि बालक खाना जानता है ?

हम चाहते हैं कि जैसे हम हैं, हमारे बालक भी वैसे ही बनें। हमने ख़ुद ही तय कर दिया है कि बालकों के लिए हमारा आदर्श पर्याप्त है। क्या कभी हम यह सोचते हैं कि हमारे बालक हम से भी ऊँची रुचि, वृत्ति और शक्ति वाले बन सकते हैं ?

क्या हम इस इतिहास को जानते हैं कि अपने पूर्वजों की तुलना में हम किन-किन बातों में आगे बढ़े हैं ?

दुनिया आगे बढ़ती है या पीछे हटती है ? हमारे दिलों में हमारे अपने बच्चों की बातों के लिए कितनी जगह है ? अगर हमारे बालक को विदेशी के बदले देशी कपड़े पहनने हों, तो क्या हमारा अर्थशास्त्र उसमें बाधक नहीं बनता ? क्या हम अपनी स्वार्थपूर्ण दृष्टि को भूल पाते हैं ? यह बात सच है या झूठ—हम अपने बालकों को अवसर ही नहीं देते कि वे नए युग की नई कल्पना को अपना सकें।

कई बालकों को सिर पर टोपी पहनना और पैरों में जूते पहनना अच्छा नहीं लगता। लेकिन इसका क्या उपाय है कि अगर बेटा टोपी नहीं पहनता और नंगे पैरों घूमता है, तो बाप की आबरू चली जाती है ?

जहाँ बाप चाहेगा, कुरते की जेब वहीं तो लगेगी न ? इस मामले में बालक की सुविधा का ध्यान कैसे रखा जाए ?

लड़की की घाघरी और उसके पोलके के प्रकार का निश्चय तो उसकी माँ को ही करना चाहिए न ? इस बात को मानता ही कौन है कि बालक में भी पसन्द करने की अपनी शक्ति होती है ? अपने बचपन में हम कौन से अपनी पसन्द की चीज़ें पहन पाते थे ? चूंकि उन दिनों हम ग़ुलाम रहे, इसलिए आज हमारे बालकों को भी हमारी उस ग़ुलामी का प्रायश्चित तो करना ही चाहिए न ?

अनुभवी माता ही इस बात का निर्णय करती है कि उसके बालक को किस समय, किस दिन, कैसे कपड़े पहनने चाहिए ? जो माँ की आँखों को अच्छा लगता है, वही सबको सुहाता है। यदि बालक ने बारात के या सभा

के लायक कपड़े न पहने हों, तो आबरू तो माता की ही जाती है न ? छोटे बच्चों की अपनी प्रतिष्ठा ही क्या है ?

बालक तो माँ-बापों की अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा के साधन जो ठहरे !

बालक तो माँ-बापों के दम्भ और अभिमान को सन्तुष्ट करने के उपकरण-भर हैं !

बूढ़ी माँ ख़ुद जिस चीज़ को पहन नहीं पाती, उसको वह अपने बालक पर लादती है। भला, जब माँ शोक में डूबी हो, उस समय उसके बालक मौज कैसे मना सकते हैं ?

बालकों की अपनी बिसात ही कितनी ? भला, उनको रंग का क्या खयाल हो ? वे बेचारे कला को क्या समझें ? सौन्दर्य को वे क्या जानें ? वे तो अपने माँ-बाप के बड़े-बड़े गुड्डा-गुड्डी हैं। माँ-बाप अपनी इच्छा के अनुसार अपने बच्चों को सजाते-सिंगारते हैं, और उनको देख-देखकर वे ख़ुश होते हैं। वे उनको खेलाते हैं और खिलाते हैं। यह सब भी उन्हीं बालकों को नसीब होता है, जिनके माँ-बाप बहुत अच्छे माने जाते हैं।

बालक बहुत चाहते हैं कि वे नंगे रह कर ही खेलें-कूदें। लेकिन उस हालत में हमारे अपने शिष्टाचार का क्या हो ? माँ-बाप ख़ुद शिष्टाचार की ग़ुलामी से छूट कर ही तो अपने बालकों को उससे छुड़ा सकते हैं न ?

भले ही गरमी पड़ रही हो और शरीर से पसीना बहने लगा हो, फिर भी बालक को कपड़े तो पहनने ही होंगे। भले ही बालक के शरीर को घूमने-फिरने की आज़ादी न मिल पाए पर कपड़े तो उसको पहनने ही होंगे। नंगा बालक कितना बुरा लगता है ? बालक के सुन्दर शरीर को नक़ली कपड़ों से ढँकने के बाद ही हम को सन्तोष होता है, और तभी हमारी कला-रसिकता का दिवाला भी निकलता है।

लेकिन बालक तो एक सामाजिक प्राणी भी है न ? समाज के सारे नियम तो उसको जान ही लेने चाहिए ? अगर उसने बचपन से कपड़े पहनना न सीखा, और अपनी बड़ी उमर में वह नंगा रहने लगा, तो सोचिए कि वह कैसा लगेगा ?

बालक कुदरत का बच्चा है। खुली हवा और उगते सूरज की धूप, ये दोनो उसके दोस्त हैं। बालक को धरती की गोद अपनी माँ की प्यारी गोद से भी अधिक प्यारी लगती है। धरती तो बालक की माँ की भी माँ है न ?

लेकिन अगर बालक को खुली हवा में घूमने-फिरने देंगे, तो उसको सरदी न हो जाएगी ? सूरज की धूप लगने से कहीं बालक को बुखार तो नहीं आ जाएगा ? बालक ज़मीन पर चले-फिरेगा, तो उसके कपड़े गन्दे होंगे और शरीर भी गन्दा होगा। यह है, हमारे सोचने का ढंग !

सोने से बिछौना गन्दा होता है, इसलिए बिछौने पर सोना नहीं है। खेलने से कपड़े गंदे होते हैं, इसलिए खेलना भी नहीं है ! यह है, हमारा न्याय ! हमारे अपने लिए एक नियम, बालकों के लिए दूसरा नियम।

अगर कोई कभी किसी बच्चे से पूछे—'बेटा ! तुम खेलना चाहते हो, या अपने कपड़ों की रखवाली करना चाहते हो ?' तो सोचिए कि कैसा मुंह पर तमाचा लगने-जैसा जवाब मिलेगा !

प्रकृति का साथ और सहवास बालक में जीवन का संचार करता है। किसी को पता भी है कि पृथ्वी के सीधे स्पर्श में बालक का कितना और कैसा-कैसा आनन्द छिपा है ?

बालक को खुले रहकर खेलना कितना अच्छा लगता है, इसको तो आप तभी समझ सकेंगे, जब बालक आपके आगे-आगे दौड़े और आप उसके पीछे-पीछे दौड़ें।

किसी को कोई अन्दाज है कि बालक की दृष्टि में सृष्टि का सारा जीवन ही चमत्कारों से भरा-पूरा है ?

धरती की निर्दोष धूल बालक को हमारे चन्दन से भी अधिक प्यारी लगती है।

हवा की मीठी लहरें बालक को हमारे वासना-पूरित चुम्बन से कहीं अधिक प्यारी लगती हैं।

उगते सूरज की कोमल किरणें बालक को हमारे खुरदरे हाथों से अधिक मुलायम लगती हैं।

जहाँ हमको कुछ नहीं दिखाई देता, वहाँ बालक को चमत्कार दिखाई देता है।

छोटे-से पतिंगे को देखकर बालक पागल बन जाता है। पतिंगे के साथ वह खुद भी पतिंगा बन जाता है। मेंढक को देखकर वह उछलने और कूदने लगता है। घोड़े को देखकर वह हिनहिनाने लगता है, और गाय को देखकर वह उसको टिटकारने लगता है !

घास का एक छोटा-सा तिनका बालक के लिए एक बड़ी संग्रहणीय चीज़ बन जाता है।

कभी आप अपने बालक की जेब टटोलेंगे, तो उसमें आपको घास के तिनके, फूल और पत्तियाँ ठूंसी हुई मिलेंगी।

प्रकृति के साथ समरस हुए बिना बालक प्रकृति के रहस्यों को कैसे समझ सकेगा ?

चाँद की चादनी, नन्हीं-सी नदी, खेतों की मिट्टी, बाड़ी के घर, टेकरी के कंकर, खुले मैदान की हवा और आसमान के रंग, ये सब वे उपहार हैं, जो बालक को प्रकृति से प्राप्त हुए हैं।

इन सबका भरपूर उपयोग करते रहने से हम बालक को क्यों रोकें ?

यदि बालकों को खुले आसमान के नीचे और खुली धरती पर दिन-रात रखा जाए, तो वे कभी घर के अन्दर आने की बात न करें।

फूल तो बालक के जिगरी दोस्त होते हैं। उनको देखकर तो बालक पागल हो उठता है। फूलों को दूर से देखते ही उसकी नाक अपना काम शुरू शुरू कर देती है। उसके चेहरे पर एक चमक आ जाती है। उसके दाँतों की कलियाँ खिल उठती हैं। उसके गालों पर दो नन्हें गड्ढे उभर आते हैं।

बालक फूल पर मुग्ध हो उठता है, उसी तरह, जिस तरह मां अपने बालक पर मुग्ध हो उठती है।

पहले बालक प्रकृति की मिठास को समझता है, और बाद में वह हमारी मिठास को समझ पाता है।

नीचे धूल में लोटकर जब बालक ऊपर आसमान की ओर ताकता है, तो उस समय वह क्या करता है ?

उस समय वह सारी प्रकृति को पी रहा होता है। वह सारी सृष्टि पर छा जाना चाहता है।

चाँद बालक को नित नया आनन्द देता है।

चाँद रात ही में दिखाई देता है, इसलिए बालक बराबर सोचता रहता है कि दिन में चाँद कहाँ छिप जाता होगा ? शायद लुका-छिपी का अपना खेल बालकों ने चाँद ही से सीखा होगा !

घी-चुपड़ी रोटी का अर्थ हम तो मनचाहा करते हैं। यह तो लोक-साहित्य के आचार्यों का काम ठहरा। अपने रोते हुए बालक को चुप करने के लिए हम भले ही उसके साथ घी-चुपड़ी रोटी का खेल खेल लें, लेकिन बालक तो यही समझता होगा कि उसको चाँद की चाँदनी खिलाई जा रही है !

भला, चाँद का उजाला और उसकी शीतलता किसको अच्छी न लगती होगी ? बालक का आनन्द तो चाँद का रंग देखने में है। चाँद की चांदनी में नहा लेने में है। चाँद के उजाले को अपनी आँखों में भर लेने में है।

इस बात को बालक तुरन्त ही मान लेता है कि चाँद पर एक हरिण और एक बुढ़िया बैठी है। यह बालक का भोलापन नहीं, यह तो उसका पागलपन है। प्रकृति के साथ बालक का कुछ ऐसा ही लगाव रहता है। बालक के दिमाग़ को विज्ञान की कर्कशता अच्छी नहीं लगता। यही कारण है कि बालकों को परियों की कथाएँ प्यारी लगती हैं। अद्‌भुतता ही बालकों का स्वभाव है, और इस अद्‌भुतता में ही उनका आनन्द समाया रहता है।

लेकिन हमको इतनी फ़ुरसत ही कहाँ के हम अपने बालक के साथ चाँद की चाँदनी में घूमने निकलें ?

क्या हमको चाँदनी पर कविता नहीं लिखनी है ? क्या हमको हरिण और बुढ़िया की लोक-कथा के मूल की खोज नहीं करनी है ? क्या हम को इस बात का पता नहीं लगाना है कि चन्द्रमा में जीते-जागते प्राणी रहते हैं या नहीं ?

किन्तु इन सब कामों के लिए आज फ़ुरसत किसके पास है ?

मनुष्य सच्चा कवि कैसे बने ?

मनुष्य चित्रकला में चमत्कार के दर्शन किस तरह करे ?

प्रकृति को पीए बिना मनुष्य प्रकृति को चित्रित कैसे करे ? वह उसका गान कैसे गाए ? वह उस पर कविता कैसे लिखे ?

क्या बिना भोजन के भी पेट कभी भरता है ?

अपने बालक को प्रकृति से दूर रखकर हम उसको क्या बनाएँगे ? देव या दानव ?

अब मैं फिर वही प्रश्न पूछता हूँ : 'घर में बालक का स्थान क्या है ?'

अपने लिए किराए का घर पसन्द करते समय हम इस बात का विचार नहीं करते कि घर में बच्चों के लिए कोई जगह है या नहीं ? हाँ, हम मकान-मालिक से यह ज़रूर पूछते हैं कि घर में मोरी है या नहीं ? रसोईघर में उजाला है या नहीं ? सोने के कमरे में हवा आती है या नहीं ? नहाने के लिए नल और पेशाब-पाखाने के लिए संडास है या नहीं ? गादियों और रजाइयों को धूप दिखाने के लिए ऊपर छत है या नहीं ? लेकिन क्या अभी तक किसी ने यह पूछा है या घर के अन्दर जाकर इस बात का पता लगाया है कि घर में बालकों के लिए खेलने की जगह है या नहीं ? भला, किराए पर घर लेते समय हमको अपने बालक क्यों याद आने लगे ? बालकों के लिए अलग जगह की ज़रूरत ही क्या है ? हमको तो यह विचार ही नया और अनोखा लगता है।

बालकों के समान छोटे-छोटे प्राणियों के लिए आज ही से अलग हक़ की बात कैसी ? उनके लिए आज ही से यह सारी खटपट क्यों ? यह सारा घर उन्हीं का तो है। इसमें रहकर वे खाएँ, पीएँ और मौज मनाएँ। इस सारे घर में घूमने, फिरने और खेलने से उनको रोकता ही कौन है ?

लेकिन बालक गाएँ कहाँ ?

वे बात कहाँ करें ?

वे खेल कहाँ खेल ?

वे नाचना-कूदना चाहें, तो नाचें और कूद कहाँ ?

वे रसोईघर में जाते हैं, तो वहाँ माँ को परेशानी होती है । माँ की सारी व्यवस्था ही गड़बड़ा जाती है ? रसोईघर गन्दा हो जाता है । अगर माँ पूजा-पाठ में लगी हों, तो उसमें रुकावट पैदा होती है ।

बालक दीवानखाने में जाते हैं, तो वहाँ पिताजी अखबार पढ़ते होते हैं, या अपने मुवक्किलों के लिए केस तैयार करने में लगे होते हैं, या गाँव में होने वाले अपने भाषण की टिप्पणियाँ लिखते होते हैं । भला, वहाँ बालकों को गड़बड़ करने की इजाजत कौन दे ?

उधर बरामदे में बड़े भैया और बड़ी बहन, दोनों अपना-अपना सबक़ तैयार करने में लगे हैं । भला, बालक वहाँ कैसे जाएँ, कैसे खेलें और कैसे गाएँ ?

इस तरह अपने घर के अन्दर बालक जहाँ भी जाते हैं, वहाँ से उनको खाली लौटना पड़ता है ।

कहीं भूले-भटके बालकों को एक तरह घर का कोई कोना मिल भी गया, तो वहाँ उनको अपनी कल्पना दौड़ाकर या तो गुड्डा-गुड्डी का खेल खेलना होता है, या झूठमूठ की रसोई बनाने और झूठमूठ ही खाने का खेल खेलना पड़ता है ।

लेकिन ज़रा सोचिए कि इस तरह हमारे बालकों की कल्पना-शक्ति का सही-सही विकास कैसे हो सकता है ?

अपने घरों में हमारे लिए और हमारे मेहमानों के लिए मेज होती है, कुरसी होती है, चटाई होती है, और जाजम आदि चीज़ें बिछी रहती हैं । लेकिन क्या अपने उसी घर में हम अपने बालकों के लिए टाट का कोई टुकड़ा भी संभाल कर रखते हैं ?

यदि हमारे बालकों से उनके दोस्त मिलने आएँ, तो वे उनको कहाँ बैठाएँ ?

लेकिन हम यह जानने का प्रयत्न ही कब करते हैं कि छोटे बालकों के भी अपने दोस्त होते हैं ?

दोस्त तो हमारे ही हो सकते हैं । भला, हमारे छोटे बालक दोस्त में और दोस्ती में क्या समझें ? पर हमारी दोस्ती तो स्वार्थवाली होती है, जबकि बालकों की दोस्ती निर्दोष होती है ।

हमारे पास अपने गहने और कपड़े रखने के लिए आलमारियाँ, ट्रंक और सन्दूकें होती हैं । लेकिन हमारे बालक अपने शंख और अपनी सीपें कहाँ रखें ?

क्या हमारे घरों में हमारे ही बालकों के द्वारा इकट्ठा किए गए पंखों को और उनके गुड्डा-गुड्डी के कपड़ों को रखने की भी कोई जगह कहीं होती है ?

हमारी कोई चीज़ चोरी चली जाए, तो बालक का ध्यान उस ओर नहीं जाता । लेकिन अगर कोई उसके द्वारा इकट्ठा किए गए पंख और फूटी कौड़ियाँ ले जाए तो वह क्या सोचेगा ? वह तो यही मानेगा कि उसका तो सारा राज ही चला गया । फिर भी अपने बालक के ऐसे कीमती संग्रह को संभाल कर रखने के लिए हम उसको एक पेटी या डिब्बा तक नहीं देते । अपने बालक के साथ हमारा यह कैसा अजब व्यवहार है ?

असल में आज हमारे घरों में बालक की परवाह ही कौन करता है ?

हमारे घरों में ऐसी खूँटियाँ ही कहाँ हैं कि जिन तक बालक के अपने हाथ पहुँच सकें ? ऐसे टांड कहाँ हैं ? ऐसी आलमारियाँ कहाँ हैं ? हमारे घरों में टाँगी गई बढ़िया-बढ़िया तस्वीरें बहुत ऊँचाई पर टँगी होती हैं । उनकी तरफ हमारा अपना ध्यान ही बहुत कम जा पाता है । ऐसी स्थिति में बालकों के लिए उनका क्या उपयोग रह जाता है ?

अपने बालक के कपड़ें हम टाँगते हैं ।

ऊपर रखे हुए लोटे-गिलास उतार कर हम उनको देते हैं ।

बड़े-बड़े पट्टे या आसन हम बिछाते हैं।

थालियाँ भी हम लगाते हैं।

बालक बेचारा क्या करे ? इन सब बड़ी-बड़ी चीज़ों को वह कैसे उठाए ? कैसे पकड़े ? बालक चाहता तो बहुत है कि अपने सारे काम वह खुद ही करे, पर कर नहीं पाता। कैसे कर पाए ?

हम तो यह मानते हैं कि हमारा बालक अपने काम ख़ुद ही कर लेने के लायक नहीं है, इसलिए उसके सारे काम हमको कर देने चाहिए। अपने बालकों को चाहने वाले माता-पिता ये सारे काम करके यह मान लेते हैं कि वे अपने बालकों को बहुत सुखी बना रहे हैं।

अपने बालक के महत्व को समझने का दावा करने वाले माता-पिता मानते हैं कि अपने बालकों के लिए वे जो कुछ भी करते हैं, सो सब उनकी पूजा करने और उनको सम्मानित करने के विचार से ही करते हैं। लेकिन असल में ये सब लोग अपने बालक को पल-पल में अपंग बनाते रहते हैं, और उसको अपना गुलाम बना लेते हैं। हम जिसके गुलाम बनते हैं, वह हमारा बड़ा गुलाम बन जाता है।

क्या हम अपने बालक पर विश्वास करते हैं ? उसके काम के बरतन उसको उठाने देते हैं ? किसी को भोजन परोसने के मौक़े हम उसको कभी देते हैं ? क्या हम उसको दीया-बत्ती करने देते हैं ? क्या हम कभी उसको चूल्हा सुलगाने का काम सौंपते हैं ? उसके छोटे-छोटे रूमाल और कपड़े हम उसको धोने देते है ?

हम तो कहते है कि बालक ये सारे काम ख़ुद कर नहीं सकता। हम मानते हैं कि उसमें व्यवस्था करने की शक्ति ही नहीं होती। लेकिन हमारे पास बालक को देखने-समझने लायक आँख ही कहाँ है ?

अज्ञान के घने अन्धकार ने हमको चारों ओर से घेर रखा है।

अपने बालक पर विश्वास करके क्या हमने उसको कभी कोई काम करने का अवसर दिया ?

बालक के बदले हम कभी खाते-पीते नहीं। बालक के बदले हम कभी चलते-फिरते नहीं। बालक के बदले हम कभी खेलते-कूदते भी नहीं।

लेकिन हम अपने बालक के बदले उसके बरतन माँज दिया करते हैं। उसको कपड़े भी हम ही पहनाते हैं। भोजन के समय उसके लिए पाटा भी हम ही बिछा देते हैं।

अगर कोई हमको हमारे लायक सारे काम करने से रोक दे तो हमको उसका यह व्यवहार कैसा लगेगा ? उस स्थिति में हमारी हालत गुलाम की होगी या मालिक की ?

क्या ऐसा मालिकपन हम पसन्द करेंगे ?

यह मालिकपन होगा या मुर्दापन ?

असल में, बालक तो सब कुछ कर सकते हैं। वे अपने छोटे-छोटे बरतन ख़ुद माँज सकते हैं। छोटे झाड़ू से वे कमरे की सफाई कर सकते हैं। वे अपनी छोटी बहन को झूले में झुला सकते हैं।

लेकिन ये सारी बातें हमको सूझती कहाँ हैं ?

यदि बालक को हम अपने घरों में उचित स्थान दें तो हमारी इस पृथ्वी पर ही स्वर्ग के राज्य की स्थापना हो जाए। हमारे घरों में देव खेलने के लिए आने लगें। देवों को मृत्युलोक में जन्म लेना पड़ जाए।

स्वर्ग बालक के सुख में है।

स्वर्ग बालक के स्वास्थ्य में है।

स्वर्ग बालक की प्रसन्नता में है।

स्वर्ग बालक की निर्दोष मस्ती में है।

स्वर्ग बालक के गाने में और गुनगुनाने में है !

•

बालक घर में क्या करे ?

अक्सर पूछा जाता है : 'हमारा बालक बाल-मन्दिर में या विद्यालय में पढ़ने जाता है तो वहाँ वह काम में लगा रहता है, लेकिन घर आने के बाद वह क्या करे ? हम जानते नहीं कि घर में उसके लायक करने जैसे काम क्या हो सकते हैं । घर में काम न मिलने पर बालक या तो आलसी बन जाता है, या आवारा बनकर जहाँ-तहाँ भटकने वाला, उलाहने सुनने वाला और ठोकर खाने वाला बन जाता है । हम जानना चाहते हैं कि बालक घर में क्या करे ? हम बालक को सुखी और काम लगा देखना चाहते हैं । इसलिए इस विषय में आप हमारा मार्गदर्शन कीजिए ।'

इस प्रश्न के उत्तर में नीचे उन कई कामों की जानकारी दी जा रही है जिनको बालक अपने घरों में कर सकते हैं ।

बालक के लिए घर कोई छोटी-मोटी दुनिया नहीं है । वहाँ उसके लायक कई काम मौजूद हैं । हमारा ध्यान उनकी तरफ गया नहीं, और हमने बालकों को वे काम सुझाए नहीं । बालक जब-जब भी खुद अपनी रुचि के के काम खोज लेते हैं तब-तब हमने अनजाने में उनका विरोध किया है । उनके कई अच्छे कामों को दबा देने के लिए हमने उनको धमकाया भी है और सज़ा भी दी है । लेकिन अब इन बातों को हम भूल जाएँ और नए सिरे से नया सिलसिला शुरू करें ।

हम थोड़ी गहराई में जाकर देखेंगे तो हमको पता चलेगा कि बालक कुछ-न-कुछ करना चाहता है । हम कुछ अधिक समय तक खड़े रहकर बालक को काम करता देखेंगे तो हमको मालूम होगा कि वह जिस काम में लगा है, वह एक निश्चित काम है । उसके पीछे उसका कोई-न-कोई निश्चित हेतु रहता है । उस हेतु को सिद्ध करने के लिए उसके मन में एक कल्पना रहती है । अपनी छोटी किन्तु प्रबल क्रिया-शक्ति की सहायता से वह उस काम में सफल होने के लिए अथक परिश्रम कर रहा है । अपनी सृजनशील और कल्पनाशील बुद्धि के सहारे उसने अक्सर उपयोगी साधन और औजार भी खोज लिए हैं । अपने काम में वह असाधारण रूप से तल्लीन रहने लगा है ।

इस तरह के काम ही बालकों के सच्चे काम हैं । इन कामों को देख-देखकर बालक की रुचि वाले कामों की एक सूची हमको तैयार कर लेनी चाहिए । बालक की रुचि के ऐसे काम हम उसको करने देंगे तो वह तुरन्त ही उनको करने लगेगा । उनमें वह तल्लीन हो जाएगा । उनको करके वह आनन्द और सुख का अनुभव करेगा ।

आजकल हमारे घरों में कभी-कदास ऐसे कुछ काम अचानक ही बालकों के हाथों में आ जाते हैं तो हाथ में चिराग़ लेकर खोजने पर भी हमको उनका पता नहीं चलता । लेकिन जब ऐसे कोई काम उन्हें नहीं मिलते तो बालक उकताकर इधर-उधर भटकते रहते हैं और जिसको हम हैरान करना कहते हैं, उस तरह वे हमको हैरान करते रहते हैं । बालकों के लिए हमको न तो कोई नए काम खोजने हैं और न खड़े ही करने हैं । जो उनकी रुचि के काम हैं, उन कामों की ही व्यवस्था हमको कर देनी है । दूसरा मतलब यह हुआ कि हम उन कामों के लिए ज़रूरी साधन जुटा दें और उन्हें करने के लिए एक जगह निश्चित कर दें, हम उनके काम में बाधक न बनें । हम न तो उनसे काम करवाएँ और न उनके कामों का कोई प्रदर्शन ही करें । हम उनको उनकी अपनी रुचि के काम करने के लिए खुला छोड़ दें ।

यहाँ ऐसे कुछ कामों की जानकारी दी जा रही है ।

: १ :

कागज और कैंची

बैठे-बैठे काग़ज़ काटने का काम बच्चों को अच्छा लगता है । इस काम के साथ वे कैंची का उपयोग करना सीख जाते हैं । इससे उनकी अँगुलियाँ

और हाथ के स्नायु सुदृढ़ बनते हैं। धीरे-धीरे वे निश्चित आकार काटने लगते हैं। काटने के मामले में उनकी पकड़ खूब बढ़ जाती है।

दूसरा काम काग़ज़ कोरने का है। काग़ज़ को दो तहा या चार तहा मोड़ कर उसको अगल-बगल से और बीच में से काटने पर उसमें कुछ आकृतियाँ तैयार हो जाती हैं। बाद में जब काग़ज़ की तहों को खोला जाता है तो बढ़िया कारीगरी का एक नमूना सामने आता है। वैसे देखा जाए तो यह बढ़िया नमूना अचानक ही बन जाता है। मतलब यह है कि बालक पहले से इनकी कोई योजना बनाता नहीं। यह सब आकस्मिक होता है। परन्तु ऐसी अनेकविध आकृतियों के नमूने डिज़ाइनों के सुन्दर प्रदर्शन का काम करते हैं और इन डिज़ाइनों को देख-देखकर बालकों को नए-नए डिज़ाइन तैयार करने की दिशा सूझती है। ये डिज़ाइनें स्वयं ही कलाकृति का एक वातावरण बनाती हैं। आगे चलकर जब बालक इन आकृतियों के निर्माण-सम्बंधी नियमों को जान लेंगे तो वे योजनापूर्वक नई-नई आकृतियाँ भी तैयार कर सकेंगे। इन सब आकृतियों का एक संग्रह (अलबम) भी तैयार किया जा सकता है। इन सब आकृतियों को कोरे काग़ज़ पर चिपका कर रखा जा सकता है।

इसके अलावा कैंची की मदद से बालक घर में मौजूद बेकार अखबारों आदि में से चित्र काट सकता है। चित्रों में बॉर्डरों और तरह-तरह के अक्षरों का भी समावेश किया जा सकता है। इन सबको इकट्ठा करके बालक इनका एक संग्रह तैयार करे। हर महीने में ऐसे एक संग्रह की जिल्द बँधवा दी जाए तो बालक का अपना एक चित्र-संग्रहालय तैयार हो सकता है। इस काम के लिए बालक को कैंची, गोंद की एक कटोरी, दातौन का या दूसरा कोई ब्रुश काग़ज़ और पत्र-पत्रिकाएँ दे दी जाए। इन्हीं के साथ कचरा डालने के लिए एक टोकरी और हाथ पोंछने के लिए कपड़े का एक टुकड़ा भी अवश्य दें।

: २ :

दियासलाई की डिब्बियां : खाली और भरी हुई

बालक दोनों तरह की डिब्बियों का उपयोग करते हैं। छोटा बालक भरी हुई डिब्बी की दियासलाइयाँ बाहर निकालेगा और फिर उन्हें भरेगा।

यह काम वह बार-बार करेगा। उसका यह खेल लम्बे समय तक चलता रहेगा। छोटे बालक को इस खेल से अच्छा शिक्षण प्राप्त हो जाता है। इससे आंखें स्थिर होती हैं, हाथ पर काबू आता है और एकाग्रता पुष्ट होती है।

खाली डिब्बियों के खेल में उनको खोलना और बन्द करना एक खेल बन जाता है। इससे आँखों और हाथों के स्नायुओं को व्यायाम का लाभ मिलता है।

इसके अलावा इन डिब्बियों की मदद से बँगले बनाए जा सकते हैं। बँगले से मतलब है, तरह-तरह की रचना। जैसे दीवार, चबूतरा, कुँआ, तालाब, रेलगाड़ी आदि-आदि। दीवारें कई प्रकार की बन सकती हैं। ये डिब्बियां घर में मिल सकती हैं या आसानी से इकट्ठा की जा सकती हैं। दियासलाई की डिब्बियाँ रखने के लिए बालक को एक छोटी-सी पेटी दे दीजिए और बैठकर बंगले आदि बनाने के लिए एक आसन भी दीजिए। आप देखेंगे कि इन साधनों को पाकर बालक बराबर काम में लगा रहेगा।

: ३ :

लकड़ी की ईंटें और घन

ये साधन बहुत महत्व के हैं। लकड़ी की ईंटों और घनों की मदद से बालक मीनार, दीवार, घर, कुंआ, बावली, तालाब आदि स्थापत्य सम्बन्धी नाना प्रकार के आकारों का निर्माण करता है। एक दीवार बनाते समय उसके कई-कई प्रकार तैयार करता है। इसके अलावा, ईंटों और घनों को जमीन पर जमा कर वह उनसे तरह-तरह की आकृतियाँ बनाता है।

इस पेटी का उपयोग करने में बालक को बड़ा मज़ा आता है। उसकी आत्मा छोटे रूप में किन्तु सम्पूर्ण कल्पना के साथ नई-नई रचनाएं रचती है। कलात्मक सृजन के लिए यह काम सुन्दर और उपकारक है। एक अथवा दो या दो से अधिक बालक भी इकट्ठा होकर इन साधनों का उपयोग करते हैं। बालक को ईंटों और घनों की एक-एक पेटी के साथ बैठने के लिए एक दरी या चटाई दीजिए।

: ४ :

चित्र देखना और चित्र बनाना

बालकों को लम्बे समय तक व्यस्त रखने वाले कामों में चित्र देखने और चित्र बनाने के काम महत्व के हैं। हर एक घर में कुछ चित्रों का संग्रह रहना चाहिए। इनमें पोस्टकार्ड-चित्र विशेष रूप से हों। इन चित्रों में बालकों को अच्छे लगने वाले विषयों के चित्र पसन्द किए जाने चाहिए, जैसे—पशु-पक्षियों के कार्ड, पतिंगों या तितलियों के कार्ड, हाट-बाजार के कार्ड और हमेशा पास-पड़ोस में घटनेवाली घटनाओं के चित्र आदि। माता-पिता चित्र खरीद न सकें तो वे इधर-उधर पड़े रहने वाले अखबारों और पत्र-पत्रिकाओं में छपे तरह-तरह के चित्रों के संग्रह तैयार कर सकते हैं। ये चित्र ठीक वैसे तो नहीं होते जैसे असल में होने चाहिए, लेकिन इनसे बालकों का काम चल सकता है। नहीं मामा से काना मामा कौन बुरा है। कुछ ऐसी ही बात इसमें भी है। चित्रों का संग्रह करने में हम अपनी दृष्टि को थोड़ा सँवार लें तो हमको बहुत-कुछ मिल सकेगा। कहीं से रंग-बिरंगे आकाश के तो कहीं से रंग-बिरंगे दृश्यों के चित्र मिल सकेंगे। विज्ञापनों वाले काग़ज़ों को काट कर भी चित्र इकट्ठा किए जा सकते हैं। अधिक अच्छा यह हो कि इन सब चित्रों के अलबम बनवा लिए जाएँ। बालक चित्रों को देखकर उनको उड़ा दें या इधर-उधर फेंक दें, इससे अच्छा तो यह हो कि वे चित्र न देखें। कला का अपमान करके मनुष्य कला की दृष्टि प्राप्त नहीं कर सकता। बालकों को चित्र सौंपने के साथ ही हम उनको चित्रों का सम्मान करने की और उनको सँभाल कर रखने की बात भी समझा दें। इस दृष्टि से चित्रों को सुरक्षित रखने के लिए एक निश्चित स्थान की व्यवस्था भी कर दें। भले ही चित्र हमें मुफ़्त में मिले हों, या रास्ते में उड़ते हुए काग़ज़ों में से हमने चित्र प्राप्त किए हों, फिर भी हमारे और बालक के मन की भावना तो यही रहनी चाहिये कि ये कलाकृतियाँ हैं। कला के प्रति हमारे व्यवहार को देखकर अक्सर लोगों का और बालकों का खयाल यह बन जाता है कि जिसके दाम देने होते हैं, वह तो कला है, और जो चीज़ बिना दामों के मिलती है, वह महज एक चिथड़ा है। यह व्यवहार कला की हत्या करने वाला है, अतएव हमारे लिये तो यह त्याज्य ही है।

हम अपनी हैसियत के हिसाब से चित्र इकट्ठा करें। लेकिन अपना सारा संग्रह बालकों को एक साथ न सौंपे। थोड़ा-थोड़ा दें। जैसे-जैसे रुचि बढ़ती जाए वैसे-वैसे देते रहें। बार-बार दें। बालक अलग-अलग समय में उनको अपनी अलग-अलग और नई-नई दृष्टि से देखेंगे।

चित्र देखने की इस बात के साथ स्टीरियोस्कोप के चित्रों को भी जोड़ लेना चाहिए।

जिस तरह चित्र देखना एक आनन्ददायक और विकासक काम है, उसी तरह चित्र बनाना भी वैसा ही काम है। बालक भी चित्र बना सकते हैं, लेकिन वे चित्र उनके अपने हिसाब के चित्र होंगे, बड़े चित्रकारों के हिसाब के हरगिज नहीं। लेकिन बच्चों के बनाए ये चित्र यदि उनको व्यस्त रखते हैं, उनको आनन्द देते हैं, उनको एक कदम आगे बढ़ाते हैं तो वे उनकी बहुत मूल्यवान कृतियाँ ही हैं। अपने विकास की कक्षा में रहकर मनुष्य जैसा भी सृजन करता है, उसके लिए वही उसका अद्भुत और भव्य, सम्पूर्ण और सुन्दर सृजन होता है। इस दृष्टि से बालकों द्वारा खींची गई लकीरें भी चित्र हैं। दो टेढ़ी-तिरछी लकीरों और कुछ बिन्दुओं की मदद से बालकों द्वारा बनाए गए कौए और गाय के चित्र भी चित्र ही हैं।

चित्र बनाने के लिए बालकों को एक काला तख्ता और अच्छी किस्म की सफ़ेद या रंगीन चॉक दीजिए। आगे चल कर उनको रंगीन पेन्सिलें और काग़ज़ के टुकड़े दीजिए।

जहाँ चॉक, तख्ता, कागज या पेन्सिल-जैसी कोई भी चीज़ न मिले, वहाँ बालकों को जरूर मौक़ा दीजिए कि वे अपने आँगन की धूल में लकीरें खींच सकें और चित्र बना सकें। गांवों में धूल में लकीरें खींच कर तरह-तरह के चित्र बनाए जाते हैं। जैसे—गुजरी, स्वस्तिक आदि-आदि।

बालकों को चित्र बनाने की सामग्री सौंप दीजिए। वे जैसे भी चित्र बनाएँ, उनको बनाने दीजिए। उनकी ग़लती मत निकालिए। बनाए गए चित्रों को इकट्ठा करके पास-पड़ोस के चित्रकला–विद्यालय में या किसी शिक्षा-संस्था में भेजकर चित्रों पर उनकी सम्मति और सुझाव प्राप्त कीजिए। प्राप्त सुझावों को ध्यान में रखकर काम आगे बढ़ाइए।

: ५ :

मिट्टी के खिलौने

बालकों को मिट्टी के खिलौने बनाने की अनुमति दीजिए। बरसात के मौसम में गारा तैयार मिलता है। दूसरे मौसमों में बालक को खेत की, गली की या आँगन की मिट्टी के गारे का उपयोग करने दीजिए। थोड़ा ख़र्च करके इस काम के लिए सफ़ेद या लाल-पीली मिट्टी का भी उपयोग किया जा सकता है

जो लोग पैसे खर्च कर सकते हैं, वे इस काम के लिए 'क्ले' और 'प्लेस्टिसिन' नामक मिट्टियाँ मंगवा लें।

मिट्टी का संग्रह करने के लिए बालकों को एक बरतन सौंप दीजिए। खिलौने बनाने के लिए एक पटिया, हाथ धोने के लिए पानी से भरी एक बाल्टी और कपड़े का एक टुकड़ा उन्हें दे दीजिए।

बालकों को पहले से यह समझा दीजिए और स्वयं करके दिखा भी दीजिए कि उनको अपने कुरते की बाँहें किस तरह चढ़ा लेनी हैं, किस ढ़ंग से बैठना है, और हाथ किस तरह धो लेने हैं।

बालक जैसे भी खिलौने बनाएँ, उनको बनाने दीजिए। वे तरह-तरह के आकार जरूर बनाएँगे। वे अपनी पसन्द की चीजें बनाएँगे और वे गारे में कई चीज़ों के ठप्पे भी तैयार करेंगे।

गारे से ईंटें बनाने का काम बालकों को सबसे पहले सुझाइए। बढ़ई से लकड़ी का एक साँचा तैयार कराया जा सकता है। जिन घरों के चारों ओर बड़ा अहाता हो, वहाँ बालक ईंटें बनाने का काम करें।

एक आवा तैयार करके गारे से बनी सारी चीजों को हम कभी-कभी पका दिया करें।

बालकों द्वारा बनाए गए गारे के मामूली खिलौनों को हम सावधानी के साथ बाल-संग्रहालय में रखवा दें। मिट्टी का काम एक सृजनात्मक काम है। इस काम के कारण हाथों के स्नायु विशेष रूप से विकसित होते हैं। हमको

पता चलता रहता है कि बालक के अवलोकन के विषय क्या-क्या हैं। अपनी कृतियों और अपने खेलों के माध्यम से बालक अपनी मनोवृत्ति को प्रकट करते रहते हैं। इस काम में भी हम इसका अनुभव कर सकेंगे।

: ६ :

आलपिन और कागज़

आलपिन की मदद से बालक तरह-तरह के काम करते हैं। सबसे छोटे बच्चे आलपिन रखने की गादी यानी 'पिनकुशन' में से आलपिनें निकालने और फिर उनको गादी में ख़ोंसने के काम में विशेष रुचि लेते हैं। थोड़ी बड़ी उमर के बालक आलपिन की मदद से कागज़ में छेद करके उनसे कई तरह की आकृतियाँ तैयार करते हैं।

आलपिनों से गिनती का काम भी होता है। आलपिनों को अलग-अलग ढंग से सजाकर उनके कई 'डिज़ाइन' भी बनाए जा सकते हैं।

इस काम के लिए हम बालक को एक प्याला, एक 'पिनकुशन' और थोड़ा मोटा कागज़ सौंप दें।

: ७ :

कपड़े के टुकड़े

खास तौर पर छोटे बच्चों को कपड़ों के छोटे-छोटे टुकडे दे दिए जाएँ तो रुमाल की तरह उनको तहते रहने का काम वे लम्बे समय तक करते रहते हैं। इससे उनको उतना ही लाभ होता है, जितना हाथ से की जाने वाली दूसरी किसी क्रिया से होता है। कपड़ों के कुछ टुकड़े एक पेटी में या एक पोटली में रखकर बालक को दे दीजिए। कपड़े के ये टुकड़े रंग-बिरंगे हों तो और भी अच्छा हो। टुकड़े रुमाल के नाप के होने चाहिए। टुकड़े गन्दे हरगिज न हों। गन्दे होने पर उनको धो लेना चाहिए।

: ८ :

मन्दिर की पेटी अथवा देवघर

आम तौर पर यह देखा गया है कि बालकों को घर का खेल खेलना अच्छा लगता है। इस खेल में आज की सामाजिक बुराइयां घुस जाती हैं–

जैसे, रोना, सिर पीटना, सांसारिक जीवन, आदि। अतएव इस खेल के बदले खेलने की उनकी वृत्ति तृप्त हो सके और उन्हें काम भी मिल सके, इस दृष्टि से उनको मन्दिर की एक पेटी दीजिए। मन्दिर की पेटी का मतलब है— सुन्दर, कलापूर्ण रचना के लिए आवश्यक सारे साधन। जैसे, तांबा-पीतल के छोटे-छोटे बरतन, तस्वीरें, गादियाँ, महुए की अथवा ऐसी ही दूसरी लकड़ी के या हाथी दाँत के बने खिलौने आदि-आदि। बालक इन सबको सजा कर रखें। उनको रुचे और जंचे तो बीच में वे देव के रूप में कोई चीज़ रख दें। वहाँ वे अगरबत्ती जलाएँ, दीपक जलाएँ फूलों की सजावट करें। स्वयं शान्तिपूर्वक बैठें। सबको बुलाकर बिठाएं, प्रार्थना करें और करवाएँ। एक दृष्टि से इसे देवघर का खेल भी कहा जा सकता है। धार्मिकता बढ़ाना इसका हेतु बिल्कुल न हो। बालक सहज ही ऐसी रचना करते रहें। माता-पिता इसमें जरा भी बाधक न बनें। वे कोई सुझाव भी न दें। बालक चाहें तो वे प्रार्थना करें। उनको जो अच्छा लगे, सो वे करते रहें। मौज से करें। लेकिन अगर वे वहां घर का खेल या गुड्डा-गुड्डी का खेल खेलने लगें तो मां-बाप उनको समझाकर मना कर दें।

एक पेटी या डिब्बे में ये सारी चीज़ें रखी रहें। एक या एक से अधिक बालक मिलकर यह खेल खेलें।

: ९ :

बाग़वानी

पेड़-पौधों की परवरिश का काम बालकों का अपना एक महत्व का काम है। वे छोटी उमर में अपने गमलों की सार-संभाल रख सकते हैं। आँगन में क्यारियां बना दी जाएँ तो बीज बोने से लेकर पौधों की परवरिश तक के सारे काम वे कर सकते हैं। वे बड़े पेड़ों को पानी पिला सकते हैं।

बालकों को पानी सींचने और मिट्टी खोदने के ऐसे साधन और औजार दिए जाएँ, जिनका उपयोग वे सरलता से कर सकें। उनको घर के आँगन में थोड़ी खुली जगह दीजिए। गेहूँ-जुवार के कुछ दाने और सुलभ हों तो फूल-पौधों के कुछ बीज दीजिए। उनको उनके ढंग से अपने बाग की

रचना करने दीजिए। हम उनसे यह न कहें कि इस तरह से बोओगे तो बीज उगेंगे, नहीं तो नहीं उगेंगे,। हम इस झंझट में पड़ें ही नहीं। हमारी दृष्टि से थोड़े बीज बरबाद भी हो जाएँ तो हो जाने दें। बालकों को जैसे-जैसे अनुभव होता जाएगा, वैसे-वैसे इस काम में उनकी निगाह खुलती रहेगी। उनका बोया हुआ एक बीज भी उगेगा तो उनके लिए तो वह एक उत्सव ही बन जाएगा।

जब वे उत्साह के साथ इन कामों में लगे होंगे तो उनको इनमें मजा आएगा। छोटे-छोटे हाथ छोटे-छोटे कामों को पूरी गम्भीरता के साथ अपनी पूरी ताकत लगा कर,कर रहे होंगे। उनके चेहरों पर पसीने की बूँदें या सुर्खी दिखाई देगी वे एकाग्र और प्रसन्न होंगे। अपनी रुचि के किसी काम में तल्लीन हो जाने पर जैसे हम दिखाई पड़ते हैं, वैसे ही बालक भी दिखाई पड़ेंगे।

हम बालकों को शुरू में ही समझा दें कि उनको औजारों का उपयोग किस तरह करना है, उनको कहाँ रखना है, और व्यवस्था एवं स्वच्छता की दृष्टि से क्या-क्या, कैसे-कैसे करना है।

: १० :

प्राणियों की परवरिश

बालकों के लिए यह एक बढ़िया काम है। हम जानते हैं कि बालक कुत्तों के और उनके पिल्लों के साथ खेलते हैं। हमारा अपना अनुभव भी है कि इस काम में बालकों को मजा आता है। कुतिया के पिल्लों, छोटे बच्चों, और अपने छोटे भाई-बहनों-जैसे अपने सब जीते-जागते मित्रों के लिए बालकों के मन में बड़ा प्यार होता है। वे उनको खिलाते हैं, पिलाते हैं, खेलाते हैं, अपनी छाती से लगाकर रखते हैं, उनको अपने साथ सुलाते हैं, उनके साथ हँसते-बोलते हैं, और उनके सुख से सुखी और उनके दुःख से दुखी होते हैं। बालकों की अपनी यह एक जीती-जागती दुनिया होती है। बालक इसी के साथ बढ़ते हैं। इसके बीच रहकर वे अपने प्रेम का विकास करते हैं। इन सबके परिचय से उनको कई तरह के अनुभव प्राप्त होते रहते हैं। बालक खुद इनको खिलाने-पिलाने

में लगे रहते हैं। अपने विकास के लिए बालकों को ऐसा सजीव वातावरण अवश्य ही मिलना चाहिए।

अगर हम बालकों को गायों, बछड़ों और बछड़ियों की दोस्ती का लाभ दे सकें तो प्राणी-परिचय की दृष्टि से वह एक सर्वोत्तम साधन बनेगा। इनके अभाव में हम कुत्ता या बिल्ली पालें। अगर घर में कोई पक्षी रखा जा सके तो और भी अच्छा हो। मतलब यह कि प्राणियों का परिचय बालक के लिए लाभदायक है और यह अपने-आप में एक बढ़िया काम भी है। इन प्राणियों की सार सँभाल में, इनको खिलाने-पिलाने में और इनके साथ जीने में बालकों का बहुत-सा समय बड़े मजे में बीतता है।

: ११ :
नाटक खेलना

शायद हम में से बहुतों ने अपने बचपन में नाटक खेले होंगे। हम में से कुछेक ने इस काम के साथ अपने को स्थायी रूप से जोड़ लिया होगा। कोई नाटक-कम्पनी के मैनेजर, कोई एक्टर, कोई गायक, कोई लेखक, कोई नाटच-विवेचक, कोई एमेच्योर नट, कोई सिनेमा के एक्टर और कोई सिनेमा की फिल्म बनाने वाले बने होंगे। मतलब यह कि बालकों को नाटक खेलना अच्छा लगता है। नाटक खेलकर बालक मुख्य रूप से अभिनय करने की अपनी वृत्ति को वेग और सन्तोष देता हैं। अभिनय एक कला है। उसके द्वारा मनुष्य का कला-प्रिय स्वभाव प्रकट होता है। यह वृत्ति सहज है और बाल-विकास के काम में इसका अपना स्थान है।

बालकों के नाटकों का मतलब है, जो कुछ भी देखा है उसको खेल के रूप में दिखाना। बहुत छोटे-छोटे बालक घर का खेल खेलते समय एक प्रकार का नाटक ही खेलते हैं। लेकिन जब इस खेल के साथ कुछ बुराइयाँ जुड़ जाती हैं तो हमको घर के खेल जैसे खेलों पर रोक लगानी पड़ती है।

बालकों ने जो नाटक खुद देखे होंगे, वैसे नाटक वे खेलना भी चाहेंगे। बाद में तो वे अपने पढ़े हुए नाटकों को भी खेलना चाहेंगे। हम उनको

निर्दोष नाटक दिखाएँगे तो नाटक खेलने की उनकी वृत्ति का पोषण होगा। इस काम के लिए उनको अनुकूलता प्राप्त होगी।

हम अपने घरों में नाटक खेलने की मनाही करते हैं, क्योंकि कई लोग नाटक के खेल को एक बुरा खेल मानते हैं। नाटक में कोई बुराई नहीं है। दुनिया में नाटक खेलने वाले बुरे हो सकते हैं और नाटक की कथावस्तु भी बुरी हो सकती है। नाटक देखने वाले भी नाटक का बुरा उपयोग कर सकते हैं। किन्तु जैसा कि ऊपर कहा गया है, अपने-आप में नाटक तो एक कला है, और इस कारण वह न केवल निर्मल है, बल्कि मनुष्य को सही गति भी देता है। लेकिन जब नाटक हल्के या नीच लोगों के हाथों में पहुँचता है, तब वह अवश्य ही त्याज्य हो जाता है। और, यह नियम तो सब अच्छी चीज़ों पर लागू होता है। अतएव हम नाटक खेलने की मनाही न करें। इसके विपरीत, हम खुद उसमें हिस्सा लेकर बालकों को दिखा दें कि निर्दोष और प्रभावशाली या शक्तिशाली नाटक कैसे होते हैं। बालक नाटक खेलना चाहें तो उनको ज़रूर खेलने दीजिए। आप उनके नाटक की कथावस्तु को देखते रहिए। हम यह देखें कि बाहरी कारणों से उनके विनोद में फूहड़पन या गँवारूपन न आए। उनके युद्ध गली-कूचे की हवा के कारण गुण्डों की मार-पीट का रूप न ले लें, इसका खयाल हम जरूर रखें। हम यह भी देखें कि उनके नाटकों में अभिनय के बदले सीन-सिनेरी को अधिक महत्व न दिया जाए। इसके लिए उनको अच्छी कथावस्तु सुझाई जाए। अच्छी कथावस्तु को महत्व देकर बुरी कथावस्तु का अभाव उत्पन्न किया जाए।

घर में नाटक खेलने के लिए ओसारा या बरामदा रंगमंच का काम दे सकता है। दिन की धूप या रात की चाँदनी रोशनी का काम करेगी। अँधेरी रात में एक चिमनी या दीया ही पेट्रोमैक्स का या बिजली के लट्टू का काम देगा। घर के दरवाज़े परदों का काम करेंगे। घर में से बाहर आना और बाहर से घर में जाना। अथवा छत पर से बैठक में आना और बैठक से छत पर जाना। घर में रोज-रोज के उपयोग के जो साधन हैं, वे ही पात्रों की पोशाक का काम देते हैं। माँ की साड़ी कभी साफे का, कभी शाल का, कभी दुपट्टे का और कभी कमरबन्द का रूप ले लेगी। पिताजी की छड़ी कभी

सेठजी की छड़ी, कभी सिपाही की बन्दूक, कभी शिक्षक का डण्डा और कभी तलवार बनेगी। अपने कपड़ों को अलग-अलग ढंग से पहनकर नई-नई वेश-भूषा दिखाई जा सकती है।

ग़लत ढंग से कपड़े पहनकर पागल बना जा सकता है। फटे-पुराने और बेतरतीब कपड़े पहनकर भिखारी का वेश बनाया जा सकता है। सलीके के साथ अच्छे कपड़े पहनकर छैल-छबीला बना जा सकता है। इनके अलावा, घर में रसोईघर के बरतन और ऐसी दूसरी कई चीज़ें होती हैं, जिनका उपयोग साधनों की तरह किया जा सकता है। शरीर की चमड़ी का रंग बदलने के लिए कम-ज्यादा राख मल कर सब प्रकार के पाउडरों की पूर्ति की जा सकती है।

इस विधि से काम करना सीख जाने पर यह बात समझ में आ जाती है कि नाटक में सीन-सिनेरी गौण होते हैं। जो भी साधन हाथ में आए, उसका उपयोग सीन-सिनेरी के रूप में कर लेने से बुद्धि की कुशलता विकसित होती है। इसमें हाज़िर जवाबी है। असल चीज़ तो अभिनय है। यदि अभिनय निन्यानबे फ़ी सदी अच्छा रहा तो वह अपनी ताक़त से वेश-भूषा आदि को भी अनुकूल बना लेगा। इसके अलावा, नाटकों का मूल्यांकन हमको आत्मबल के आधार पर करना है, इसलिए बाहर के सीन-सिनेरी से उनको कभी ढँकना नहीं है। नाटक घर में ही खेले जाएँ। उनके लिए कोई नई चीज़ ख़रीदी न जाए। कोई ख़ास व्यवस्था न की जाए। नाटक खेलने की इच्छा हो जाए तो नाटक शुरू कर दिया जाए। बालक खुद ही तय करें कि उनको कौन-सा नाटक खेलना है। नाटक का 'प्लाट', उसकी कथावस्तु, सबके ध्यान में रहती ही है। बालक नाटक के संवादों को कभी रट कर याद न करें। जब बालकों को पता चलेगा कि बिना रटे भी नाटक खेला जा सकता है तो उनको उसमें बहुत मजा आएगा। सारा सिरदर्द दूर हो जाएगा। नाटक के चलते 'टेबलो' की जो स्थिति बनती है, वह नहीं बनेगी। प्रॉम्पटर की और रिहर्सल की ज़रूरत नहीं रहेगी। जब जैसी ज़रूरत होगी, तब संगत-असंगत, कम-ज्यादा, जो भी सूझा, सो बोलकर काम निपटाने की और समय सूचकता से काम लेने की तैयारी रहेगी। नाटक के शब्दों की रटी हुई चौखट से बँध जाने के कारण अभिनय में जो रुकावट खड़ी होती है, वह नहीं होगी।

इस तरह घर में बालक नाटक खेलते रहें। कोई यह न माने कि उनके नाटक देखना या उनके संवाद सुनना ज़रूरी ही हैं। घर में करने लायक यह एक मजे का काम है।

: १२ :
मिकैनो आदि

मिकैनो अथवा ऐसे खेल या साधन कि जिनके उपयोग से बालकों में यंत्रों के उपयोग की बुद्धि और कुशलता बढ़ती है, घर में रखे जाने चाहिए। यदि मध्यम श्रेणी के परिवारों के लिए साधन महँगे सिद्ध हों तो इनको छोड़ा जा सकता है। अथवा दो-चार पड़ौसी मिलकर ऐसे साधन सबके लिए इकट्ठा खरीद लें, और किसी एक घर में उनको रख दें। बालक वहाँ पहुंचकर उनका उपयोग करें। बालक तो इस तरह इकट्ठा होकर इनके उपयोग का आनन्द लूटेंगे ही, पर इसका भरोसा नहीं कि माता-पिता इसके बहाने से झगड़े खड़े करेंगे ही नहीं, यह काम सबके सहयोग से हिल-मिल कर चल सके तो एक प्रयोग के रूप में उसको चलाकर देखा जाए।

मिकैनो के लिए या ऐसे दूसरे साधनों के लिए एकान्त स्थान और बैठक की व्यवस्था की जानी चाहिए। जिस बालक को ऐसे खेलों का शौक़ होता है, वह तो इन खेलों को मीठे भोजन के रूप में अपना ही लेगा।

: १३ :
फूल और पत्तियाँ इकट्ठा करना

बालकों को खोजना, इकट्ठा करना और रखना-धरना अच्छा लगता है। इसका मतलब यह है कि बालकों में संग्रह और संचय की अच्छी वृत्ति रहती है। इस वृत्ति का अर्थ होता है, 'म्यूजियम स्पिरिट'—वस्तु संचय की वृत्ति। बालक स्वयं अपने आसपास की दुनिया से और पदार्थों से जो ज्ञान प्राप्त करता है, उस ज्ञान को ज्यों का त्यों अपने सामने रखने के लिए वह वस्तुओं का संग्रह भी करता है। यह भी कहा जाता है कि इसके द्वारा बालक अपनी प्राथमिक स्थिति की परिग्रह वृत्ति की सद्‌गति या उच्च गति को व्यक्त करता है।

अपने आसपास की दुनिया को देखने और उसमें जो अच्छा लगे, उसको इकट्ठा करने के लिए बालकों को खुला छोड़ देना चाहिए। वे जो भी कुछ इकट्ठा करें हम उसका स्वागत करते रहें। उनके द्वारा इकट्ठी की गई चीज़ों में बकरी की मींगनी और काँच के टुकड़े भी होंगे। आज जिन चीज़ों को देखकर हमको हँसी आती है, अपने बचपन में हमने उन चीज़ों को टक लगा लगा कर देखा है। उनके स्वरूप को समझने के लिए हमने अपनी सब इन्द्रियों के साथ मेहनत की है। उन पर अपना समय खर्च करके उनके सम्बन्ध की जानकारी पालने के बाद ही आज हमने उनको बेकार मान लिया है। ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते जाते हैं, त्यों-त्यों हमको निकम्मी लगनेवाली चीजों को हम पीछे छोड़ते जाते हैं। अपने इस निजी अनुभव पर भरोसा करके कि हमारे बाद आने वाले भी उनको निकम्मी लगने वाली चीज़ों को छोड़ते रहेंगे, हम बालकों को मौके दें कि वे अपनी रुचि की चीज़ों को खोजें और उनको इकट्ठा करें।

अपनी इकट्ठा की गई चीज़ों को अच्छी तरह सजाकर बालक अपनी कला-विषयक दृष्टि का विकास करेंगे। उनके द्वारा इकट्ठा की गई चीज़ों को सँभालकर रखने की अनुकूलता हम अवश्य ही कर दें।

बालकों को हम ठीक से समझा दें कि फूलों और पत्तियों को किस तरह इकट्ठा किया जा सकता है और कैसे सँभाल कर रखा जा सकता है। यदि बालक फूलों और पत्तियों को तोड़कर लाएँगे और उनको अपनी पुस्तकों में दबाकर रखेंगे तो इससे उनको वनस्पति का अच्छा परिचय होता रहेगा। आगे ये नमूने चित्र बनाने के काम में आ सकेंगे। सजावट के काम में भी इनका उपयोग किया जा सकेगा।

: १४ :
रेत का ढेर

आँगन के सामने रेत के ढेर का मतलब होता है, बालकों के लिए तरह-तरह के कामों का एक जीता-जागता केन्द्र। बालकों को इस ढेर के पास पहुँचने दीजिए। वहाँ उनको उनकी रुचि के अनुसार कुएँ, बगीचे, रास्ते, किले

चीज़ों को अच्छी तरह रखने, अपने कपड़ों के बटन लगाने-खोलने, बूटों के फीते बाँधने और खोलने और पानी पीने जैसे काम करने लगता है। बाल-मन्दिर में नए भरती हुए बालक को और कुछ दिन पहले भरती हुए बालक को देखने से साफ़ ही पता चल जाता है कि दोनों के बीच कितना फ़रक है। बाल-मन्दिर में भरती हुआ नया बालक कुछ समय बीतने पर बाल-मन्दिर के वातावरण में रहकर दूसरे बालकों के साथ घुलना-मिलना, इकट्ठा होकर साथ में काम करना, और अपने कारण दूसरों को कष्ट न पहुँचाते हुए अपना काम करना सीख जाता है। कुछ ही समय में उसका मिजाजी स्वभाव बदल जाता है। वह मिलनसार बन जाता है। लड़ना-झगड़ना भूल कर प्रेम करने लगता है। चीखने-चिल्लाने और ऊधम मचाने के बदले बहुत-कुछ शान्त और स्वस्थ बन जाता है। जो अपने आपको जानता ही नहीं था, वह अब अपने को जानने-पहचानने लगता है। दूसरों के भरोसे बैठा रहता था या रोया करता था, वह अब अपना काम खुद कर लेता है और मस्त रहता है। जो एक कोना पकड़ कर अकेला बैठा रहता था, वह जब कइयों का मित्र बन जाता है। यही नहीं, बल्कि वह धीमे-धीमे घर और बाल-मन्दिर के बीच के फ़रक को भी समझने लगता है। बाल-मन्दिर के सामाजिक वातावरण का इतना प्रभाव उस पर पड़ता है।

बालक बाल-मन्दिर के मुक्त वातावरण में और वहाँ के विशाल मैदानों में रहकर अपने शरीर को खूब कसता रहता है। जो बालक शुरू में फ़ुरती के साथ चल-फिर भी नहीं सकते, कुछ ही दिनों में वे सारे मैदन में सरपट दौड़ने लगते हैं, धूप में और हवा में लम्बे समय तक मस्त होकर घूम सकते हैं, निडर होकर दूर-दूर तक लकड़ी के अपने घोड़ों को दौड़ा लेते हैं, और पास की गैलरी के कठहरे पर चढ़कर अपना तौल सँभालते हुए उस पर चलना सीख जाते हैं यहाँ वे अपनी हर साँस में स्वस्थता का पान करते ही रहते हैं। इस सारे समय में वे शहर के शोर-गुल, गन्दगी दौड़ा-भागी और धाँधली से दूर रह लेते हैं। वे शहरों के छोटे-छोटे घरों और वहाँ के गन्दे वातावरण से बचे रहते हैं। शहरो की गन्दी और स्वार्थ पूर्ण हवा से बचकर वे एक स्वच्छ, परस्पर सहयोगी और सम्मान-भरे वातावरण में रहते हैं। उनके लिए तो

यह सब एक नया शिक्षण ही है। उनका यह सारा समय कभी बरबाद होता ही नहीं। इस समय में बालक अपने शारीरिक, मानसिक और नैतिक विकास के बीज बोता रहता है।

इस विकास के साथ ही अपनी पद्धति के अनुसार हम बालकों को इन्द्रियों का शिक्षण भी देते हैं। इन्द्रिय-शिक्षण की व्यवस्था मोन्तेस्सोरी-पद्धति के लिए प्राण-रूप है। इसी में मोन्तेस्सोरी-पद्धति की विशेषता है। इन्द्रियों का शिक्षण मन अथवा आत्मा के शिक्षण के लिए नींव-रूप है। अब तक इस प्रकार के शिक्षण का हमने कोई परवाह ही नहीं की। इसके कारण हम जीवन-भर अपंग की तरह रहते हैं। बाद में इसकी कमी को पूरा किया ही नहीं जा सकता। आरम्भ में इन्द्रिय-शिक्षण न लेने के कारण आगे की सारी पढ़ाई बेकार बन जाती है। बाल-मन्दिर में भरती होने वाला नया बालक बड़े और छोटे पदार्थों के बीच के भेद को पहचान नहीं पाता। उस समय उसको लम्बाई और छोटाई का अथवा चौड़ाई और मोटाई का शायद ही कोई ख़याल रहता हो। उसकी स्पर्श की इन्द्रियों को चिकने और खुरदरे के बीच का फ़रक़ समझ में नहीं आता। रंगों की पहचान तो उसे होती ही नहीं। आकारों के बारे में वह बहुत ही कम जानता-समझता है। उसके कानों के लिए शोर-गुल और सुन्दर, समधुर स्वर, दोनों लगभग समान ही होते हैं। उसके चारों ओर रूप-रंग से भरी सारी दुनीया फैली है, लेकिन उसको उसमें कुछ दीखता नहीं। इन सब में उसकी कोई दिलचस्पी होती नहीं। किन्तु जब उसकी इन्द्रियों का विकास हो जाता है, तो वह अपनी सधी हुई आँखों से सृष्टि की सुन्दरता को, सधे हुए कानों से संगीत की मधुरता को, और सधे हुए स्पर्श से भाँति-भाँति की वस्तुओं की समनलता के लालित्य का अनुभव कर सकता है। वह अपने इस आनन्द में डूबा रहता है। बालक के जीवन की जो दिशा अब तक बन्द पड़ी थी, वह खुल जाती है, और उसका जीवन-सुख आसमान से लेकर पाताल तक विशाल बन जाता है। यहाँ बालक खेल ही खेल में अपनी इन्द्रियों का विकास इस तरह कर लेता है कि उसको उसका पता ही नहीं चलता। यह उसकी दूसरी और सच्ची पढ़ाई है।

इस दूसरी पढ़ाई के समाप्त होने पर ही हम आज की अपनी पाठशाला में बालक को अपनी पढ़ाई पढ़ाना शुरू करते हैं। कारण यह कि शुरू की दो प्रकार की पढ़ाई को हम बुनियादी पढ़ाई मानते हैं। इसलिए जब बालक हमारे बाल-मन्दिर में भरती होता है, तो हम न तो उसको गिनती सिखाते हैं, और न बारहखड़ी ही सिखाते हैं। लेकिन जो माता-पिता अपने बालक को बड़ी उमर का बालक बनाने के लिए हमारे यहाँ भेजते हैं, वे जब हमारे मन्दिर में बालक की पढ़ाई का सच्चा समय आ पहुँचता है, तभी अपने बालक को हमारे बाल-मन्दिर से हटाकर ले जाते हैं। उनका यह व्यवहार हमारे लिए बहुत ही दुख-दायी बन जाता है! पढ़ाई के पहले की तैयारी के बाद ही हम बालक को अंक और अक्षर का ज्ञान कराते हैं। बहुत खबरदारी के साथ हम खाद, पानी, बीज और हवा आदि की उचित व्यवस्था करके ऐसी स्थिति खड़ी करते हैं कि बीज में से अंकुर फूटने लगता है। ठीक उसी समय माँ-बाप उस अंकुर को उसकी जड़ के साथ उखाड़कर चलते बनते हैं! यही नहीं, बल्कि वे हमारे मत्थे यह दोष भी मढ़ते जाते हैं कि उनका बालक यहाँ इतने समय तक रहा, पर वह गिनती तक सीख नहीं सका, उसका समय बेकार ही बीता। अब तो हमको उसकी पढ़ाई की व्यवस्था करनी ही चाहिए न?

ऐसी स्थिति में हमारे दुःख की कोई सीमा ही नहीं रहती!

शुरू में माँ-बाप कहते हैं: 'हमको पढ़ाने की जल्दी नहीं।' लेकिन कुछ ही समय के बाद जब बालक को गिनती भी नहीं आती, तो वे कहते हैं: 'चलो, घर चलें।' इस तरह बालक को वापस घर ले जाते समय माँ-बाप हमसे बात कर लेते हो, बाल-मन्दिर में बालक ने क्या सीखा, क्या समझा, इसकी जानकारी हम से ले लेते हों, तो हमारे मन में कभी यह विचार उठे ही नहीं कि सचमुच हमारे ये माता-पिता केवल स्वार्थी और कृतघ्न हैं। बालकों को भरती कराते समय जो माँ-बाप हमारी खुशामद करते हैं, वे बालक को हटाते समय हमको अपना मुँह तक नहीं दिखाते भला ऐसे माता-पिताओं को कितना उलाहना दिया जाए?

जो माता-पिता यह मानकर अपने बालकों को बाल-मन्दिर में भेजते हैं कि यहाँ तो सब कुछ जल्दी-जल्दी और जादू के ढंग से पढ़ा दिया जाता है,

उनके इस विचार की स्पष्टता भी आवश्यक है। कोई भी पढ़ाई जादू के ढंग से पढ़ाई ही नहीं जा सकती। इसके उपरान्त भी बाल-मन्दिर में ऐसी कुछ बातें हैं, जिनका प्रभाव बालकों पर जादू की तरह होता है। हमारे बाल-मन्दिर के बालकों की निगाह हमेशा मन्दिर पर ही टिकी रहती है। जब हम उनको बाल-मन्दिर से छोड़ते हैं, तो उनको घर जाना अच्छा नहीं लगता। हम बाल-मन्दिर में छुट्टी रखते हैं, तो बालक हम पर नाराज होते हैं, और अगर हम उनको बाल-मन्दिर से निकाल देते हैं, तो इसको वे अपने लिए एक बड़ी-से-बड़ी और कड़ी सज़ा मानते हैं! इस जादू का कारण यह है कि हम उनको आज़ादी के साथ रहने देते हैं, हम उनको भय और सज़ा से मुक्त रखते हैं, उनको जो कुछ भी सीखना है, या जो भी निर्दोष काम करना है, सो हम उनको करने देते हैं। हम उनको किसी जादू से पढ़ाते नहीं हैं, न पढ़ा ही सकते हैं। यहाँ के स्वतन्त्र और पोषक वातावरण में बालक अपनी शक्ति के हिसाब से कम या ज्यादा सीख लेता है। हम मानते हैं कि हर एक बालक जब अपनी हैसियत के हिसाब से बोझ उठाता है, तो इससे उसको लाभ ही होता है। इसके कारण कभी कोई-कोई बालक जल्दी-जल्दी सीखकर हमको आश्चर्य-चकित और हर्ष-विभोर भी कर देता है इसके विपरीत, जब कोई बालक बहुत धीमी गति से चल कर काफी पीछे रह जाता है, तो वह हमारी चिन्ता बढ़ा देता है। किन्तु यदि बालको को लम्बे समय तक रहने दिया जाता है, तो हर एक बालक सीखना ज़रूर है। वैसे, बालक सीख तो है ही। कोई बालक धीमी गति से चलता है, तो कोई तेज गति से चल लेता है। कोई बालक किसी एक विषय में आगे बढ़ता है, तो दूसरे किसी विषय में पीछे भी रह जाता है। सब बालक एक ही वातावरण में रहते हैं, फिर भी उनकी अपनी प्राकृतिक शक्ति का भेद उनमें बना रहता है। हमको उनके घर के संस्कार-सम्पन्न वातावरण का पता चलता रहता है। उनके घर के रीति-रिवाज यहाँ मन्दिर में छिपे नहीं रहते। मन्दिर में हर एक बालक को एक ही डण्डे से हाँका नहीं जाता। हम इस बात का कोई आग्रह नहीं रखते कि बगीचे के पेड़ों की तरह चारों तरफ से एक-सी कटाई करके सब को एक ही आकार-प्रकार वाला बना दें। सब को एक ही साँचे में ढाल कर एक-सा बना देने में

हम मानते ही नहीं हैं। हम यह मानते हैं कि जो चीज़ बीज रूप में उनके अन्दर पड़ी हुई है, वह अच्छी तरह फूले-फले, इसकी ख़बरदारी हम को रखनी है। अपनी ओर से हमको खाद-पानी देना है, और दिशा सुझाते रहना है। इस तरह बालक के अन्दर से जो भी प्रकट होता है, उसको देख कर हम प्रसन्न होते हैं। किन्तु माता-पिता की वृत्ति ऐसी नहीं रहती। होशियार बालकों के माता-पिता का ध्यान लाभ पर रहता है। वे सोचते हैं कि उनका बालक अधिक सीख गया है, जल्दी सीख गया है, समय बच गया है, श्रम भी बच गया है, इसलिए उसको आगे जल्दी पढ़ा-लिखाकर होशियार बना देने के विचार से, और इस होशियारी के भरोसे उसको इनाम पाने वाला बनाने के लोभ में वे बालक को दूसरी पाठशाला में भरती करा देते हैं, और इस प्रकार हमारी सारी उज्ज्वल आशाओं पर वे स्याही पोत देते हैं। होशियार बालकों के माता-पिताओं की तरफ से हमको यह उपदेश-सा मिलता है कि मानो हमारे बाल-मन्दिर ने उनके बालक को अच्छा बना कर कोई अपराध किया है। जो बालक पिछड़ जाते हैं, उनके माता-पिताओं के सामने तो बालक को उठा लेने का कारण स्पष्ट ही है लेकिन वे जानते नहीं हैं कि उनका बालक बाल-मन्दिर में सीख तो रहा ही था, सिर्फ़ सीखने की उसकी गति धीमी थी। हम यह सिद्ध कर सकते हैं कि जिन बालकों को यहाँ से इसलिए हटा लिया जाता है कि वे यहाँ प्रगति नहीं कर रहे थे, वे बालक दूसरी जगह जाकर भी बहुत आगे नहीं बढ़ सके हैं। उनकी स्वतन्त्रता तो उन से छिन गई, किन्तु उसके बदले में किसी दूसरी पाठशाला ने उनको आगे बढ़ने की शक्ति नहीं दी। अक्सर जब फसल पकने को होती है, तभी यह कह कर कि बालक पढ़ाई में पिछड़ गया है, उस को मन्दिर से हटा लिया जाता है, तो इस से हम को दुःख होता है, यह सोचकर हमारा मन पीड़ा से भर जाता है कि दूसरी पाठशाला में भरती होने पर शुरू-शुरू में वहाँ का वातावरण और व्यवहार बालक को बहुत अखरेगा। इसी के साथ हमें इस बात का सन्तोष भी रहता है कि जितने समय तक बालक हमारे बीच रहा, उतने समय तक उसका विकास होता गया और वह सुखी भी रहा।

जो बालक एक ही विषय में आगे बढ़ते हैं और दूसरे विषयों में आगे बढ़ने से इनकार करते हैं, उनके माता-पिताओं को सन्तुष्ट करना कुछ कठिन

हो जाता है किन्तु यदि मां-बाप हमारे साथ रहेंगे, तो उनको भी यही अनुभव होगा कि जिस काम में बालक स्वर्ग के-से सुख का आनन्द लेता है, जिस काम को करते हुए वह दिन-दिन भर थकता नहीं है, जिसके लिए इन्कार करने पर उसकी आँखें छलछला आती हैं, वह काम उस से छीना नहीं जाना चाहिए। फिर भले ही बालक और कुछ न भी सीख सके। हम तो यह मानते हैं कि जो बालक एक ही विषय के बारे में बहुत-कुछ सीख लेगा, वह बाद में ही क्यों न हो, दूसरे विषयों के बारे में भी जरूर ही सीखेगा। कारण यह है कि एक बार उसमें सीखने की शक्ति आ जाएगी, तो बाद में दूसरे विषय सीखना उसके लिए कठिन नहीं रहेगा।

हमारे बाल-मन्दिर में आए हुए कुछ बालकों के उदाहरण देकर मैं अपनी बात समझाना चाहूँगा। एक लड़की को भौमितिक आकृतियाँ बनाने का बेहद शौक़ था। बाल-मन्दिर में आते ही वह न तो संगत में जाती, न पढ़ती, न लिखती, न खेलती और न घूमती-फिरती। वह तो अपने हाथ में भौमितिक आकृतियाँ लेकर उनकी मदद से चित्र बनाने बैठ जाती। चित्र बनाती ही रहती। नई-नई और सुन्दर-सुन्दर भौमितिक आकृतियों की रचना करते रहने में ही उसका मन रमा रहता था। वह पढ़ना-लिखना जानती थी, पर अगर वह पढ़ने-लिखने लगे, तो चित्र बनाने का उसका काम छूट जाए। लड़की के माता-पिता ने माना कि यह लड़की तो एक भी किताब पढ़ती नहीं है। पढ़ने में इसकी कोई रुचि ही नहीं है! जिस दिन उन्होंने उस लड़की को मन्दिर से हटा लिया, उस दिन उनके हाथों उस लड़की की बढ़िया कला कृतियों की हत्या हुई। उसे चार किताबें पढ़ाकर लिखना-पढ़ना सिखाकर और जोड़, बाक़ी, गुणा, भाग त्रिराशी आदि के रूप में थोड़ा गणित सिखाकर उसके माता-पिता उसको कौनसी शक्ति देंगे? उसकी आत्मा तो भौमितिक आकृतियों के चित्रों में रमी रहती थी। इस काम में वह अपने को और अपने आस पास की सारी दुनिया को भूल जाती थी। अब जब कभी वह रास्ते में मिलती है, तो मारे शरम के अपना मुंह छिपा लेती है। एक बार वह बाल-मन्दिर में आई, तो वहाँ के अपने पुराने सुख को याद करके रो पड़ी।

एक लड़के की बात। इस लड़के के पिता की श्रद्धा अच्छी रही होगी। वे कहा करते: 'बारह साल का हो जाने पर भी मैं इस को यहाँ से हटाऊँगा नहीं। भले ही यह पढ़े, चाहे न पढ़े।' हमारे मन्दिर में तो स्वतन्त्रता थी। लड़के का स्वभाव कुछ अजीब ही था। लड़का भला, बाल भावना से भरा-पूरा, बिलकुल साफ़ दिल का और पारदर्शी हृदय वाला था। बाहर घूमना, फिरना और खेलना उसको बहुत अच्छा लगता था। मित्रों के बिना उसका काम चलता नहीं था। बाहर छोटी-सी कुटिया बनाना, बाग़ बनाना, साज-सिंगार की चीजें इकट्ठा करना, रामायण की कहानियाँ सुनना, और मस्त होकर घूमते रहना, बस ये ही उसके प्रिय काम रहे। प्रयोग की दृष्टि से हम ने उसको मन्दिर में रखने का प्रयत्न किया। बाहर जाने के लिए वह कई तरह के बहाने खोजा करता। हमारे दबाव के कारण पेशाब का झूठा बहाना करता! हम उसके साथ बाहर जाते, तो भला वह पेशाब कैसे करता? फिर वह पानी माँगता। उसे पानी दिया जाता। इसके बाद वह पाखाना जाने की बात कहता। हम उसके साथ जाते और फिर वैसे ही लौट आते। फिर हम हँसकर उसको इजाजत दे देते कि उसको जहाँ भी जाना हो, वहाँ वह जाए। इस सबके बावजूद, कभी-कभी वह बाहर से घूमता-फिरता अन्दर आता, और वहाँ बैठकर ढेर सारे काम कर डालता। चित्र बनाता। अक्षर सीखता। और जब कहानी का या लोक गीत का नाम सुनता, तो फ़ौरन वहाँ हाजिर हो जाता। यह बालक अपने स्वभाव की सुन्दरता का विकास कर रहा था, और उसके इस काम में हम उसकी मदद कर रहे थे। लेकिन आखिर इस बालक के पिता का धैर्य खूटा, और उन्होंने उसे मन्दिर से हटा लिया। हमने एक आनन्दी, स्नेही और प्रेमी बालक खोया। हम इसकी शिकायत किस से करें? आज की पढ़ाई का मोह कुछ कम है क्या? लेकिन इस घटना ने हमारे दिलों में आग सुलगा दी है। यह आग तभी सच्ची साबित होगी जब किसी दिन पढ़ाई के इस मोह को यह जला डालेगी।

एक और लड़की की बात सुनिए। लड़की बहुत ही होशियार थी। कुछ ही दिनों में वह अच्छी तरह पढ़ना-लिखना सीख गई। एक साल के अन्दर ही वह बुद्ध की जातक कथाएँ पढ़ने लगी। चित्र अच्छे बना लेती थी। नाचना सीख गई

थी और रास-क्रीड़ा में भी भाग लेती थी। लड़की सब दृष्टियों से होशियार थी, लेकिन यहाँ बाल-मन्दिर में उसकी क़द्र कौन करे? बाल-मन्दिर में उसको पहला नंबर देने की व्यवस्था कैसे की जाए? लड़की के माता-पिता ने माना कि यहाँ उनकी बेटी की होशियारी का कोई उपयोग नहीं है। उन्होंने उसको हटा लिया और एक दूसरी पाठशाला में भरती कर दिया। हमने लड़की से पूछा : 'बहन तुम क्यों चली गईं?' उसने कहा : 'दूसरी पाठशाला में घाघरी-पोलका मिलता है! मैं तो वहीं पढ़ूँगी, जहाँ मेरी माँ चाहेगी।' इनाम के लोभ में अपने बालक को पाठशाला से उठा लेने-वाले माता-पिता बालक को इनाम का विष किस तरह पिलाते हैं, इसका प्रत्यक्ष अनुभव हमने इस निमित्र से किया। जिस इनाम के लिए आज वह पाठशाला अच्छी लगती है, कल वह इनाम क्या नहीं करेगा?

इनाम देने वाली इन पाठशालाओं को वह आग क्यों न जलाए?

अब एक ही लड़की की बात और सुन लीजिए। लड़की कितनी सुन्दर और सुकुमार थी? प्राण तो मानो उसकी आँखों में ही आकर बस गए थे। उसके सपनों और विचारों में तरंगें लहराया करती थीं। कुछ देर के लिए उसके साथ काव्य के क्षेत्र में विचरण करें, तो कह सकते हैं कि उसकी चित्रात्मक कहानियाँ परियों के देश की थीं। वह दिन भर चित्र ही बनाती रहती थी—बस, चित्र, चित्र और चित्र! हर चित्र के साथ एक नई ही कल्पना, रंगों की नई ही मिलावट, और नई ही रचना। स्वच्छता, सुकोमलता और सुरम्यता की छटा उसके हर चित्र में बिखरी पड़ती थी। कभी-कभी वह पढ़ना पसन्द करती थी। लिखती भी थी, पर स, ख, प, ल, ब से आगे बढ़ती नहीं थी। पढ़ाई का नाम सुनकर उकता उठती थी। लेकिन जब कातने बैठती थी तो अपने चित्रों की तरह, अपने शरीर की रचना की तरह, और अपनी हँसी की तरह सुन्दर, महीन और सफ़ेद सूत कातती थी। लेकिन उसके माता-पिता ने कहा : 'चित्र बना-बनाकर यह क्या करेगी? दूसरा कुछ तो यह सीखती ही नहीं है।' उन्होंने उसको उठा लिया। हमारी वकालत भी काम नहीं कर पाई। बेचारी लड़की हम से कहती है : 'शादी से पहले मुझ को घर का काम-काज भी तो कुछ सीख लेना चाहिए न?' उसकी माँ यह कहकर

पहाड़ आदि बनाने दीजिए उनको समझा दीजिए कि वे अपने सिर को रेत से बचा लें। रेत से सने हाथ धोने के लिए पानी वाली एक जगह तय कर दीजिए। रेत में खेलने से कपड़े गन्दे होते हों, तो उनसे कहिए कि वे सिर्फ चड्डी पहन कर खेलें। रेत के बीच बैठ कर बालक ढेर सारे काम करते रहते हैं। इसकी प्रतीति हमको तभी होगी, जब हम खुद उनको काम करते देख लेंगे। घर के सामने आँगन हो, और वहाँ रेत के ढेर की व्यवस्था करना पुसा सके, तो यह व्यवस्था अवश्य कीजिए। दो गाड़ी रेत काफी होगी। अलबत्ता, शहरों में इसकी व्यवस्था करना कठिन ही होगा।

ऊपर जिन कामों की चर्चा की गई है, ऐसे दूसरे भी कई काम हैं। जैसे, सिक्कों को माँजना, राँगोली पूरना, तकली चलाना, झाड़ना-बुहारना, बरतन माँजना, कपड़े धोना, पढ़ना, लिखना, आदि-आदि। घर में ये सब काम किए जा सकते हैं।

* * *

कामों की इस सूची को पढ़कर इसके अनुसार झटपट कामों की व्यवस्था कर देने से बात बनेगी नहीं। इसके बारे में थोड़ा विचार कर लेना होगा। हम बालकों के खेल (गेम्स) और काम (एक्टीविटीज़) को अलग-अलग मानें। घर में रहते हुए बालक कई तरह के खेल खेल सकते हैं। बालक अकेले भी खेलते हैं और दूसरों के साथ भी खेलते हैं। सब खेल आनन्द और आराम के लिए होते हैं। खेल का मुख्य हेतु आनन्द ही है। किन्तु ऊपर जो काम गिनाए गए हैं, उनका स्वरूप, उनकी आत्मा, सृजन की है। बालकों के लिए तो ये काम भी खेल-स्वरूप ही हैं, पर असल में ये खेल (गेम) हैं नहीं। खेल में कुछ करना होता है। कोई क्रिया होती है। जैसे, लुका-छिपा के खेल में दौड़ना होता है। लेकिन दौड़ना उसका उद्देश्य नहीं होता। उद्देश्य होता है, हाथ न आना या पकड़ा न जाना। इस तरह खेल में क्रिया समाई रहती है। पेड़ को पानी पिलाना एक क्रिया है। इसका हेतु है, अमुक एक क्रिया करना, जैसे पेड़ को पानी पिलाना। यहाँ क्रिया और हेतु दोनों एक हैं। यहाँ पेड़ को पानी पिलाना एक काम माना गया है। इस अर्थ में यह लेख खेल और काम में फ़रक करता है। 'घर के खेल' शीर्षक से इस विषय पर एक अलग लेख लिखा

जा सकता है। इस भेद को समझकर ही घर में अलग-अलग कामों की व्यवस्था की जानी चाहिए।

समझने लायक दूसरी बात यह है कि बालकों के लिए हर एक घर में ऐसे सब कामों की व्यवस्था करना आवश्यक नहीं है। सब घरों में सब काम करवाना सम्भव ही नहीं है। इसलिए साधन, सम्पत्ति, सुविधा आदि का ध्यान रखकर जितने कामों की व्यवस्था सहज ही की जा सके, उतनों की की जाए। धनवानों के घरों में सब प्रकार के कामों की व्यवस्था की जा सकती है। लेकिन वैसी व्यवस्था करने के बाद किसी को इस भ्रम में नहीं रहना चाहिए कि बालक को ये सारे काम करने ही होंगे। धनवानों के घरों में खाने-पीने की चीज़ों के ढेर लगे रहते हैं, लेकिन इसका यह मतलब नहीं होता कि बालक उन सारी चीज़ों को खा डालें। यही बात काम के बारे में भी है। आज जहाँ काम बहुत बढ़ गए हैं, वहाँ बालक को उन कामों का अजीर्ण नहीं होना चाहिए। काम बालक के लिए है। बालक काम के लिए नहीं है। बालक काम किए बिना रह नहीं पाता। उसको बहुत कुछ करना होता है। इसलिए इन कामों में से कई काम वह न करे तो भी हम को उसकी चिन्ता नहीं रहनी चाहिए। मतलब यह कि हम बालक के लिए काम की अनुकूलता कर दें लेकिन उसको काम करने के लिए बाध्य न करें। बालक जो भी काम करे, सो अपनी राज़ी-खुशी से ही करे।

बालक के लिए हम जिन-जिन कामों की व्यवस्था कर दें, उन कामों को वह शान्ति-पूर्वक कर सके, बीच में किसी का कोई हस्तक्षेप न हो, इसका ध्यान हम ज़रूर रखें। इसके लिए उसको अलग जगह दी जा सके, तो अच्छा ही है। कई काम जुटा देने के बाद एक भी काम करने की ठीक व्यवस्था न हो, इसके बदले किसी एक ही काम का व्यवस्थित रूप से चलना बहुत उपकारक होगा।

काम की व्यवस्था के बारे में ऊपर जो सूची दी गई है, वह मार्गदर्शक है। जो विज्ञान के या वनस्पति के विषय में अधिक जानते-समझते हों, वे ऊपर दी गई मर्यादा को ध्यान में रख कर उन-उन विषयों के कामो की

व्यवस्था कर सकते हैं। अपने अल्प अनुभव और अल्प ज्ञान के आधार पर मैंने ऊपर दी गई सूची तैयार की है।

जब-जब भी बालक कोई काम करे, तब-तब हम उसके चलते काम का अवलोकन करेंगे, तो उससे हमको और बालक को भी लाभ होगा।

घर में जिन कामों की व्यवस्था की गई है, उनमें से बालक किन कामों को अपनाता है, किन को नहीं अपनाता, कौन से काम उसे बहुत अच्छे लगते हैं, और कौन से बिलकुल नापसन्द हैं, इसके अध्ययन से हम कुछ पता लगा सकेंगे कि बालक का रुझान किस तरफ है।

जो काम बालक को एकाग्र नहीं रख पाता, जिस काम से बालक का मन उकताने लगता है, जो काम बालक और बालक के बीच झगड़ा ही करवाता है, जो बार-बार की हमारी मदद के बिना चल ही न सकता हो, तो हम को समझ लेना चाहिए कि या तो बालक अभी उस काम के लायक नहीं है, या वह काम इस समय बालक के लिए उपयोगी नहीं है। ऐसा काम छोड़ देना चाहिए। वही काम सच्चा माना जाए जो बालक को व्यस्त रखे, प्रसन्न रखे, एकाग्र रखे, जिस को करते-करते बालक हँसे, गाए और दूसरों को उसमें सम्मिलित करना चाहे।

अक्सर बालक उस काम से भी थक जाता है, जो उसके लिए उपकारक होता है। जो काम एक बार बालक के लिए बहुत ही रुचिकर और उसको एकाग्र बनाने वाला रहा, जब बालक उस काम के साथ झगड़ने लगता है, उस को अच्छी तरह कर नहीं सकता, इसलिए खीझता या चिढ़ता है, जिस को खुद ही कर सकता था, उस को कर देने के लिए माँ या बाप को बुलाता है, तो समझ लेना चाहिए कि बालक उस काम से थक गया है। अब उस काम से उसको सुख और आराम नहीं मिल सकेगा। ऐसी स्थिति में उसको उस काम से इस तरह हटा लेना चाहिए कि जिससे उसका मन न दुखे। जिन्होंने इस स्थिति का अनुभव किया है, वे कहेंगे : 'हाँ, बात बिलकुल सही है। थके हुए बालक को धीमे से हटाकर सुला देते हैं, तो वह तुरन्त ही गहरी नींद में सो जाता है।'

अक्सर दो-चार बालक इकट्ठा होकर कोई काम शुरू करते हैं। ऐसे समय कई बार काम बहुत अच्छी तरह चलता है, तो कई बार मुश्किलें भी खड़ी हो जाती हैं। काम अच्छी तरह चलता नहीं। किसी को उससे सन्तोष होता नहीं। कभी-कभी बालक आपस में लड़-झगड़ भी लेते हैं। इसके कई अलग-अलग कारण हो सकते हैं। यहाँ उन सब की ब्योरेवार चर्चा करना इष्ट नहीं। लेकिन कारण का पता लगाकर उपाय करना चाहिए। अच्छा यह है कि बालक खुद आपस में ही समझ लें। जहाँ यह सम्भव ही न हो, वहाँ बीच-बचाव करके हम फैसला कर दें। फैसला ऐसी कुशलता से करें कि सबको या बहुतों को वह सही और सन्तोषकारक मालूम हो।

अक्सर जब बालक बीमार होते हैं, या हमने उनको डाँटा-डपटा होता है, तब उनका मन स्वस्थ नहीं रह पाता। ऐसी स्थिति में काम व्यवस्थित रीति से नहीं हो पाता। काम उनको परेशान कर देता है, और वे हमको परेशान करते हैं। परिणाम-स्वरूप हम काम को ही निकम्मा समझने लगते हैं। सम्भव है कि ऐसे बाहरी कारणों से हमारी दृष्टि में काम का शैक्षणिक मूल्य प्रायः घटता-बढ़ता रहे। ऐसे समय हम सावधान हो जाएँ, और काम की निन्दा या विरोध न करके इस बात का पता लगाएँ कि आखिर दोष का कारण क्या है।

•

माँ-बाप क्या करें ?

(एक पत्र)

अपने बालक को बाल-मन्दिर में भरती करवाने के आपके उत्साह का मैं प्रेम-पूर्वक स्वागत करता हूँ। मैं जानता हूँ कि दूसरी पाठशालाओं की तुलना में यह मन्दिर आपको अधिक अच्छा लगा है। मैं चाहता हूँ कि आपका बालक लम्बे समय तक इस मन्दिर में रहकर सर्वांग सुन्दर शिक्षण प्राप्त करे।

फिर भी मैं आपको कुछ बातों की जानकारी दे देना चाहता हूँ। मैं आपको इस बात का कुछ अन्दाज़ दूँगा कि बाल-मन्दिर से आपके बालक को क्या-क्या और कैसे-कैसे लाभ होंगे। थोड़े में मैं आपको इस बात की भी कल्पना दूँगा कि बालक के प्रति, हमारे प्रति और बाल-मन्दिर के प्रति आपकी रीति-नीति किस प्रकार की रहनी चाहिए। हम पर और हमारी कार्य-पद्धति पर पूरा विश्वास रखकर ही आप अपने बालक को मन्दिर में भरती कराना चाहते हैं! लेकिन अक्सर हुआ यह है कि भरती कराने वाले माता-पिता भरती कराते समय तो कहते है—'हम बालक को यहीं रखना चाहते हैं। हमको इस बात की थोड़ी भी चिन्ता नहीं है कि यहाँ वह पढ़ेगा या नहीं पढ़ेगा। आपके समान शिक्षकों के सत्संग में और ऐसी सुन्दर सुविधाओं वाले वातावरण में रखने के बाद हमको और किसी बात का कोई विचार करना ही नहीं है। हमारे लिए यही काफ़ी है कि हमने अपना बालक आपके हाथों में सौंप दिया है। बालक के सच्चे माँ-बाप तो आप ही हैं।' लेकिन कुछ दिनों के बाद हमको पता चलता है कि बालक को यहाँ भेजने के कुछ और ही कारण थे। अपने अनुभवों के आधार पर हम कहते हैं कि कुछ

माता-पिता अपने बालकों के ऊधमों और उपद्रवों से उकता कर उनको अपने से अलग-रखने के इरादे से यहाँ भेजते हैं। कई माता-पिता कुछ दिन ताँगे का या घोड़ा गाड़ी का मजा लूटने के लिए अपने बालक को यहाँ भरती कराते हैं। कुछ माता-पिता अपने उद्दण्ड और उपद्रवी बालकों को सीधा और सच्चा बनाने और सही रास्ते पर लाने के लिए उनको यहाँ भेजते हैं। जो बालक पुराने ढंग की पाठशाला में जाने से घबराते हैं, जो जहाँ-तहाँ भटकते रहते हैं, जो लड़-झगड़कर माँ-बापों और शिक्षकों को हैरान और परेशान करते हैं, उनको भी यहाँ भेजा जाना है। कुछ माता-पिता बालक को भरती कराते समय कहते हैं कि अभी कुछ समय के लिए यह भले ही यहाँ रहे, अभी इसको पढ़ाने की जल्दी ही क्या है? अभी तो यह छोटा बच्चा ही है। जब पढ़ने लायक उमर का होगा, तो दूसरी पाठशाला में भरती हो जाएगा। कुछ माता-पिता यह सोचकर भी भेजते हैं कि इस बाल-मन्दिर में ऐसा कोई जादू है कि बिना किसी मेहनत के, बहुत छोटी उमर में ही यहाँ बालक को सब कुछ पढ़ा दिया जाएगा, जिससे बाद में उसको जल्दी ही पहली या दूसरी कक्षा में भरती कराया जा सकेगा। कुछ माँ-बाप यह मानते हैं कि यहाँ लड़कियों को भरती कराना अच्छा है क्योंकि यहाँ उनको संगीत, चित्रकला आदि विषय सिखाए जाते हैं, और गणित सिखाया नहीं जाता। लेकिन लड़कों को तो गणित सीखना ही होता है। इन सबके अलावा, ऐसे माता-पिता भी हैं, जो अपने बालकों को सच्ची श्रद्धा के साथ, सही समझदारी के कारण, और दूसरी पाठशालाओं की बुराइयों से परेशान होकर यहाँ भेजते हैं। और, मैं निःशंक भाव से यह कह सकता हूँ कि ऐसे ही बालकों को बाल मंदिर का पूरा-पूरा लाभ मिला है।

इस बात का विचार आप ही को कर लेना है कि आप अपने बालकों को किस कारण से बाल-मन्दिर में भेजते हैं। यदि आप अपने उद्देश्यों को छिपाएँगे, तो बाद में आप को पछताना होगा, और आपके बालक का समय और हमारी मेहनत बेकार जाएगी। जो माँ-बाप घर की परेशानी दूर करने के लिए बालकों को बाल-मन्दिर में भेजते हैं, उनके लिए मन में घृणा उत्पन्न होती है। अगर ऐसे माँ-बापों के बालकों को हम अपने यहाँ आश्रय न दें, तो सचमुच ही हम मूर्ख और पापी माने जाएँ। ऐसे माँ-बापों से हम यही कहना

चाहते हैं कि भविष्य में उनको बालकों की उत्पत्ति के बारे में संयम का सेवन करना चाहिए। जो अपने बिगड़े हुए या आवारा बालकों को सुधारने के लिए हमारे पास भेजते हैं, उन पर हमको दया आती है। जो बालक आपके घरों में बिगड़ें और आवारा बनें, उनको सुधारने के लिए आप हमारे यहाँ भेजें, इसके समान हास्यास्पद विचित्रता और क्या हो सकती है? ऐसे माता-पिताओं को निश्चित रूप से यह समझ ही लेना चाहिए कि जब तक वे खुद इस मामले में हमारी ही तरह फिकर नहीं रखेंगे, तब तक हमारे प्रयत्न भी विफल ही रहेंगे। कोई भी माता-पिता यह मानने की ग़लती न करे कि बाल-मन्दिर में ऐसा कोई जादू है कि जिससे वहाँ बिगड़े हुए बालक भी अचानक ही सुधर जाते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि हम तो ऐसे प्रयत्न करते ही हैं कि जिन से बालक अच्छे-से-अच्छा बने। जो माता-पिता अपने बिगड़े हुए बालकों को हमारे यहाँ भेज देते हैं, उनको हमारी एक शर्त क़बूल करने की तैयारी रखनी होगी। अगर हम उनके ऐसे बालकों को वापस उन्हीं को सौंप दें तो उनको चाहिए कि वे हमारी अथवा हमारी पद्धति की निन्दा करने के बदले तीन सालों में हमने उनके बालकों को जो शिक्षण दिया है, उसका उपकार वे ज़रूर मानें। बिगड़े हुए बालकों को सुधारने के प्रयत्न को हम अनुचित मानते हैं। फिर भी जब तक दूसरे बालकों को नुक़सान नहीं होता, तब तक बिगड़े हुए बालकों को सुधारने के प्रयत्न हम करते रहेंगे। न सुधर सकने वाले बालकों को हम अपने पास से विदा करें, तो यही समझा जाए कि उन बालकों को किसी दूसरी पाठशाला की आवश्यकता है। बेशक, बिगड़े हुए बालक को विदा करने से हमारे बाल-मन्दिर का सवाल तो हल हो जाता है, लेकिन बालक का सवाल हल नहीं होता। हमारे मन में इसका अफ़सोस ज़रूर रहता है। हाँ, हम यह सुझा सकते हैं कि उसके लायक पाठशाला कौनसी हो सकती है, लेकिन उसकी कोई व्यावहारिक व्यवस्था हम न भी कर सकें। इसके उपरान्त भी जो माता-पिता दीन भाव से हम में पूरी-पूरी श्रद्धा रखकर और परिणाम के बारे में बेफिकर रह कर अपने बिगड़े हुए बालकों को यहीं रखने का आग्रह करेंगे और रखेंगे, तो हमारी श्रद्धा यह है कि उनके बालक निश्चित रूप से अच्छे बन ही जाएंगे।

जो माँ-बाप अपने बालक के पढ़ने योग्य होने तक उसको आराम करने या हवा खाने के लिए हमारे पास भेजते हैं, उनके समान नासमझ और कोई नहीं। वे जानते ही नहीं कि शिक्षण क्या चीज़ है। शिक्षण का आरम्भ तो बालक के जन्म से ही हो जाता है। जो माँ-बाप अपने बालक को दूसरी पाठशाला में जाने लायक बनाने के लिए यहाँ भेजते हैं, उन से मेरा निवेदन है कि वे अपने बालक को यहाँ हर्गिज न भेजें। जो माता-पिता अपने बालक को यहाँ भेजते हैं, उनको दूसरी पाठशाला की बात पाप रूप माननी चाहिए। जो आज के प्राणघातक शिक्षण में से अपने बालकों को बचा लेना चाहते हैं, वे ही उनको हमारे यहाँ भेजें। बालक को यहाँ भेज कर थोड़े समय के लिए यहाँ के स्वराज्य और यहाँ की स्वतंत्रता के सुख का अनुभव करवा कर बाद में उसको फिर क़ैदखाने में ही बन्द करना हो, तो वे यहाँ का नाम भी न लें। उनको इस दिशा में देखना ही नहीं चाहिए। अपने छोटे बालक को थोड़ा बड़ा बनाने के विचार से और जब तक वह बड़ा नहीं बनता, उसको दूसरी पाठशाला में खेलने के लिए भेजने के विचार में छल और पाप रहा है। जो बालक छल और पाप की छाया में रहकर यहाँ पढ़ने आते हैं, वे विद्या प्राप्त नहीं कर सकते। वे तो यहाँ से अविद्या लेकर ही लौटेंगे, जो निश्चित रूप से मानते हो कि चूँकि दूसरी पाठशालाएँ खराब हैं, इसलिए अपने बालकों को उनमें भरती करना हराम है, वे ही अपने बालकों को हमारे बाल-मन्दिर में भरती करवाएँ। जिन की बुद्धि स्थिर न हो, जिन की मनोवृत्ति ढुलमुल हो, उनके लिए प्रचलित पाठशालाएँ मुबारक रहें। हमने बहुत घातक चोटें सही हैं, इसलिए हमको ऐसी कड़ुई बातें लिखनी पड़ रही हैं।

बालक के बाल-मन्दिर में भरती होने के बाद हम तुरन्त ही उसकी देख-रेख शुरू कर देते हैं। सब से पहले बालक की गन्दी, बेढंगी और असमाजिक आदतों को सुधारने का काम हाथ में लिया जाता है। कुछ ही समय में बालक खुद यह समझने लगता है कि वह कितना गन्दा रहा करता था, और उसके कपड़ों का क्या हाल था। धीरे-धीरे वह अच्छी तरह चलने, उठने, बैठने, धीमी आवाज में बात करने, जाजम बिछाने, झाड़ू लगाने, परोसने,

उसको बालमन्दिर में आने नहीं देती: 'अब मुझको इसे काम सिखना चाहिए।' कैसी दयनीय और भयंकर स्थिति है। हमको तो ऐसा लगा, मानो हमारा कोई प्रिय पुत्र खो गया हो! हमें अपनी छाती को तो ठिकाने रखना ही पड़ता है, पर उसके अन्दर एक धधकती-सी आग जलती रहती है। एक बार जब यह आग चारों ओर फैल जाएगी, तो यह शिक्षा के पुराने मापदण्डों, ब्याह की रुढ़ियों और माँ-बाप सहित सबको जलाकर राख कर देगी। अपने देश के भावी चित्रकारों को खोते समय हमारे मन की क्या स्थिति होगी? क्या किसी को अन्दाज है कि इसके कारण देश का कितना जबरदस्त नुक़सान हो रहा है? फिर भी हमारे हृदय से तो यही उद्गार निकलते हैं कि माता-पिता अपने बालकों के भविष्य के विषय में कभी निराश न हों। क्योंकि जो बालक हमको छोड़कर चले गए हैं, वे भी हमारे बालक तो हैं ही, और हम भी उन्हीं के हैं। उन्होंने हमको बार-बार विश्वास दिलाया है कि वे हमारे ही हैं और हम उनके ही हैं!

जो माता-पिता यह समझ कर कि यह बाल-मन्दिर लड़कियों के लिए अधिक अच्छा है, और लड़कों को भी यहाँ थोड़ा उपयोगी शिक्षण मिलता है, लड़कों को न भेजकर यहाँ लड़कियों को भेजते हैं, उनकी ग़लत फ़हमी दूर होनी चाहिए। हमारे लिए तो लड़के-लड़की दोनों समान ही हैं। यहाँ तो जो जिस काम के योग्य होगा, वह काम सीखेगा। जिसको भूख लगी होगी, वह खाएगा। यहाँ हम यह निर्णय करने का दिखावा नहीं करते कि यह मन्दिर लड़कियों के लिए अधिक अच्छा है, और लड़कों के लिए अच्छा नहीं है। अपनी ऐसी धारणा बनाकर क्या समाज एक राक्षस को खड़ा करने का दुस्साहस नहीं कर रहा है? ऐसे बालकों को बचाकर समाज बचेगा या उनके साथ वह खुद भी नष्ट हो जाएगा?

इस तरह बीच ही में बालकों को हटाकर माता-पिता बाल-मन्दिर की ओर बालकों की जो हत्या करते हैं, उसके लिए उनको एक बार जवाब तो देना ही पड़ेगा। हमारी यह व्यथा बाल-मन्दिर के लिए नहीं, बल्कि बालकों के लिए है। क्या कोई इन माता–पिताओं से पूछेंगे कि अपने किस अधिकार के बल पर वे बालकों के साथ ऐसा अत्याचार करते हैं? किन्तु वे माता-पिता

धन्य हैं, जिन की श्रद्धा अभी भी अविचल बनी हुई है। बाल-मन्दिर में ऐसे माता-पिताओं के बालक कभी भी देखे जा सकते हैं। कोई बालक बढ़िया चित्रकार बनने की आगाही देता है, तो किसी में अच्छे संगीतज्ञ के गुण प्रकट होते हैं, किसी बालक की गतिविधियों को देखकर बरबस कहना पड़ता है कि यह बालक साहित्य-रसिक बनेगा। दूसरे किसी बालक को देखकर मन में यह आशा प्रकट होती है कि यह बालक अच्छा गणितज्ञ ही बनेगा। हर एक बालक किसी-न-किसी विषय में अपनी सुन्दरता और विशेषता का परिचय देता रहता है। कोई आगे है, तो कोई पीछे है। किसी को एक वस्तु अधिक प्रिय है और दूसरी वस्तु कुछ कम प्रिय है। किन्तु सबका शारीरिक और मानसिक विकास अविरत गति से हो रहा है।

हम इस विचार को अमान्य मानते हैं कि लड़कियाँ कुछ विषयों में योग्य बन सकती हैं, और लड़के कुछ खास विषयों में ही योग्य बन सकते हैं। यह तो एक ज़ुल्म-जैसी ही बात है कि अमुक विषयों में लड़के ही तैयार हों, और अमुक विषय लड़कियों को आना ही चाहिए। हम तो एक ही बात में मानते हैं। लड़की युद्ध में वीरता दिखाए, और लड़का रसोई बनाने में प्रवीणता का परिचय दे, तो हम इसमें बाधक नहीं बनेंगे। माता-पिता के मन से यह भ्रम दूर होना ज़रूरी है कि बाल-मन्दिर में लड़कों की अपेक्षा लड़कियों के लायक शिक्षा की अधिक व्यवस्था है। क्या संगीत और चित्रकला के साथ लड़कों की कोई शत्रुता हो सकती है? क्या ये विषय मनुष्य-जीवन की उत्तमता और सुन्दरता को सिद्ध करने के लिए उत्तम-से-उत्तम साधन नहीं हैं? जब से हमने संगीत और चित्रकला के साथ शत्रुता शुरू की है, तभी से हम सब व्यवहार-चतुर बनिए ही बनकर रह गए हैं। क्या हमने कभी सोचा भी है कि उसी समय से हमारा जीवन कितना अधिक क्षुद्र और अरसिक बन गया है? और, क्या गणित का विषय लड़कियों के लिए उपयोगी नहीं है? जिन-जिन विषयों का सम्बन्ध जीवन से है, वे सारे विषय बालक को प्रिय ही होते हैं। इस मामले में लड़के और लड़की के बीच कोई भेद रहना ही नहीं चाहिए। यद्यपि हमारे बाल-मन्दिर में किसी भी विषय का ज्ञान अनिवार्य नहीं है, फिर भी अगर अनिवार्य शिक्षा देनी ही हो, तो गणित और इतिहास

की अपेक्षा मैं चित्रकला और संगीत को ऊँचा स्थान दूँगा। यों कहिए कि पहला ही स्थान दूँगा।

मनुष्य वह है, जिसमें भावना होती है। संगीत और चित्रकला भावना के विषय हैं, इसमें ठण्डी बुद्धि वाला व्यापारी-गणित नहीं होता। मेरा मन कहता है कि मैं माता-पिताओं को उलाहना देते हुए कहूँ कि आप अच्छे विषयों को लड़कियों के विषय मान कर अपने लड़कों को घटिया विषयों का शिक्षण देने और उनको पामर बनाने की बात क्यों सोचते हैं? माता-पिता कहते हैं: 'हमारे लड़के से चरखा चलवाकर आप उसको लड़की क्यों बना रहे हैं? चरखा चलाना तो लड़की का काम है।' कुछ लोग यह भी मानते हैं कि बाल-मन्दिर में तो लड़कों को लड़की बनने का शिक्षण दिया जाता है। कुछ माता-पिता शिकायत करते हैं कि लड़कों को पेड़ों पर चढ़ाकर और युद्ध का शिक्षण देकर क्या फ़ायदा होगा? किन्तु चरखा तो कला का विषय है। कला लड़की के लिए ही सुरक्षित रहेगी, तो लड़के को आत्महत्या कर लेनी होगी। कला–विहीन प्राणी बिना पत्तों वाले पेड़ के समान होते हैं। लड़के खुद ही अपने रूप के कारण भयावने लगेंगे। जो सफाई के या झाड़ने-बुहारने के काम को औरतों का काम मानते हैं वे तो नामर्द हैं। मर्द तो तलवार और झाड़ू को समान मानते हैं। सच्ची स्त्री तो झाड़ू को एक और रखकर तलवार बाँधेगी और मैदान में उतरेगी। एक हथियार एक प्रकार का कचरा साफ़ करने के लिए है, और दूसरा हथियार दूसरे प्रकार के कचरे की सफाई के लिए है। यदि लड़कियाँ युद्ध के मैदान में नहीं उतरेंगी, तो चाँदबीबी (या झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई–अनु.) हमको कैसे मिलगी? लड़कों को कातने नहीं देंगे, तो उनको घर में भोजन बनाकर देना होगा, और लड़कियाँ लड़ाई लड़ने जाएँगी। अगर हम लड़कों और लड़कियों के बीच फ़रक़ करेंगे, तो ऐसे विचित्र और सुन्दर परणिाम हमारे सामने आएँगे। अस्तु। आपने देखा कि किन–किन कारणों से माता-पिता अपने बालकों को यहाँ बाल-मन्दिर में भेजते हैं, और वे कैसे-कैसे लाभ या कैसी हानि उठाते हैं। अपने बालक को यहाँ भेजने से पहले आप इन सब बातों का विचार जरूर ही कर लीजिए।

अब हम बालकों के प्रति आपके अपने कर्तव्य के बारे में थोड़ी चर्चा करें। बालक के प्रति माता-पिता का कर्तव्य इतना बड़ा और गम्भीर है कि उस पर भागवत भी लिखी जाए, तो वह छोटी ही लगेगी। इसलिए यहाँ हम उसका उल्लेख भर करेंगे। नीचे मैं इस विषय की एक सूची दे रहा हूँ कि आपको कौन-कौन से सूत्र याद रखने हैं, और किस तरह उन सूत्रों पर अमल करना है। हमारी पहली इच्छा यह है कि आप अपने बालक को कभी कोई सज़ा न दें। मुझ को इस बात की तनिक भी चिन्ता नहीं है कि सज़ा से बालक के शरीर को कष्ट पहुँचता है, क्योंकि मारने-पीटने का असर तो थोड़ी ही देर रहता है। बालक उसको भूल भी जाता है। लेकिन सज़ा के कारण बालक के मन में जो डर पैदा होता है, वह भयंकर है, प्राण घातक है और दुष्ट है। इस डर के कारण बालक डरपोक, झूठ बोलने वाला और नामर्द बन जाता है। आगे चलकर डर के करण ही बालक दुराचारी बनता है। आज हम धर्म से, समाज से, रुढ़ि से, जाति से और सत्ता से जो डरते हैं, उसका करण क्या है ? बचपन से हमारे अन्दर जो डर घुस गया है, वही इसका कारण है। दूसरों से डरने के कारण हम झूठ बोलते हैं और नामरदी दिखाते हैं। आज भय दिखाकर हम अपने बालक को डरा सकते हैं। कल शिक्षक उसे डरा सकेगा और आगे कुछ समय के बाद पुलिस वाला उसे डरा सकेगा। जैसे भी बने, आप अपने बालक को इस डर से ज़रूर बचा लीजिए।

मार-पीट कर और सज़ा देकर आप अपने बालक को डरपोक और झूठ बोलने वाला बना देंगे। लेकिन लालच देकर, या फ़ुसलाकर तो आप उसको नालायक ही बना बैठेंगे। जो बालक घर से पैसे लेकर विद्यालय में पढ़ने जाएगा, वह न्यायाधीश को रिश्वत देकर झूठा फैसला लिखवा लेगा, और वही बालक ज़मीन या सत्ता हासिल करने के लिए खून भी करेगा या करवाएगा। खाने की चीज़ें दे-देकर जिस बालक से हम अपने काम करवा सकेंगे, उसी बालक को कपड़े-लत्ते, हीरा-मोती और जवाहरात देकर हम व्यभिचारी भी बना सकेंगे। निर्भयता को और मोह को जीतने की शिक्षा ही सच्ची शिक्षा है। भय और लालच दोनों गिराने वाली चीज़ें हैं। भय से नरक मिलता है, और लालच से स्वर्ग दरवाजे आकर खड़ा हो जाता है। लेकिन आखिर इन दोनों जगहों से मनुष्य को गिरना पड़ता है। भय और लालच से रहित प्रदेश तो अधरवाला प्रदेश है—वह स्वर्ग और नरक से भी परे है।

तीसरी बात यह है कि आप अपने बालक को स्पर्धा के विष से ज़रूर बचा लीजिए। दो बालकों के बीच होड़ या स्पर्धा खड़ी करके उनसे काम करवा लेने का तरीक़ा एक हलका तरीक़ा है। हम बच्चों से रोज ही कहते है : 'आओ, देखें, पहले कौन दौड़ता है ? पहले कौन चूमता है ? कौन पहले पानी लाता है ? इस तरीक़े से हमारा काम तो हो जाता है, लेकिन बालक की आदत बिगड़ जाती है। जब-जब उसको होड़ में उतरने का मौका नहीं मिलता, तब-तब वह दूसरों हराकर, मारकर, दूसरों की कब्र पर चलकर खुद जीत का सुख लूटने की कोशिश करता है। स्पर्धा या होड़ एक तरह का नशा है। जिस तरह नशेबाज आदमी नशे की हालत में अपना ज़ोर दिखाता है, उसी तरह जब तक आदमी पर स्पर्धा का नशा सवार होता है, तभी तक वह काम करता है। आप अपने बालकों को आपस की हाडा होड़ी के या स्पर्धा के रास्ते कभी मत ले जाइए। स्पर्धा में एक व्यक्ति तो पीछे रहता ही है। जो पीछे रह जाता है वह निराश और निरुत्साही बनता है। इसके विपरीत जो जीत जाता है, वह घमण्डी और दम्भी बनता है। स्पर्धा एक पैबन्द है। उसमें से सच्चा प्राण प्रकट होता ही नहीं। उलटे, स्पर्धा तो सच्ची प्राण-शक्ति को दूर भगा देती है, अथवा उसको विकृत बना देती है।

चौथी बात यह है कि बालकों को धार्मिक शिक्षा देने की बात आप अपने मन से निकाल ही दीजिए। धर्म की बातें कहकर, धर्म के काम करवा-कर, धर्म को रूढ़ियों की पोशाकें पहना कर हम अपने बालकों को कभी भी धार्मिक बना नहीं सकेंगे। बहुतेरे माता-पिता हमसे कहते हैं कि अपने बाल-मन्दिर में हम बालकों को नीति का शिक्षण दें, तो अच्छा हो। कहने वालों का आशय यही रहता है कि हम बालकों को तोतों की तरह नीति का शिक्षण दिया करें। वे चाहते हैं कि बालक धर्म की बातें करने लगें। बार-बार माता-पिता के या देवी-देवताओं के आगे सिर झुकाकर उनको प्रणाम करते रहें और माँ-बाप की आज्ञा को भगवान की आज्ञा मानकर उसको सिर-माथे चढ़ाते रहें। भला हम अपने बालकों को ऐसा शिक्षण कैसे दे सकते हैं ?

अगर हम यह मानें कि उपदेश से मूँछें आ जाएँ, अंधा देखने लग जाएगा, और लँगड़ा चलने लगेगा, तभी न हम बालक को धर्म या नीति के उपदेश के द्वारा धार्मिक अथवा नीतिमान बनाने का प्रयत्न करेंगे ? यह देखकर हमारे मन में खेद उत्पन्न होता है कि जिन माता-पिताओं के अपने जीवन में ऐसी कोई बात है ही नहीं कि जिसको देखकर बालक उनके चरण छूना चाहें, वे माता पिता नीति की शिक्षा की मदद से अपना अधिकार स्थापित करना चाहते हैं। आप खुद तो इस लोभ से दूर ही रहिए। धर्म किसी पुस्तक में नहीं है, किसी उपदेश में नहीं है, और न कर्मकाण्ड की किसी जड़ता में ही है। धर्म तो मनुष्य के जीवन में है। यदि आप अपने जीवन को पूरी तरह धार्मिक बनाए रखेंगे, तो समझिए कि अपने बालक की धार्मिक शिक्षा के लिए आपने वह सब किया है, जो आपको करना चाहिए। यदि आप दम्भी होंगे और अपने बालक को धार्मिक बनाना चाहेंगे, तो निश्चित रूप स वह भी आप ही की तरह धर्म का दम्भ करने वाला बनेगा।

एक-दो बातें आप से और भी कहनी हैं। चूंकि हम अपने बालकों को समझते नहीं हैं, इसलिए हम उनसे परेशान हो उठते हैं, और वे हमसे परेशान बने रहते हैं। बालकों के बारे में अपनी उथली-छिछली समझ के कारण हम बार-बार उनका अपमान करते हैं, और बार-बार उनको बहुत दुखी भी बनाते रहते हैं। बालक एक सम्पूर्ण मनुष्य है। उसमें बुद्धि है, भावना है, भाव है, अभाव है। उसका अपना एक जीवन है। अपने ऐसे बालक रूपी मनुष्य को अपनी तरफ से हम पूरा-पूरा सम्मान दें। हम उठते-बैठते बालक को दुतकारते-फटकारते रहते हैं, डाँटते-डपटते रहते हैं, छोटी-छोटी बातों को लेकर उसका मन दुखाते हैं, उसका पानी उतारते हैं, उसकी न कुछ-सी कमजोरियों के लिए उसको शरमिन्दा बनाते हैं, यह सब उसके लिए तो बहुत ही दुःखदायक और अपमानजनक होता है। हम बालक की दुनिया को जानते--समझते नहीं है, इसलिए अपनी ही जिद चलाते हैं, अपना ही चाहा जोर देकर करवाते रहते हैं। हम यह मान लेते हैं कि हमारे विचार ही बालक के भी विचार हैं, हमारी इच्छाएँ ही बालक की भी इच्छाएँ हैं, और जो हमको पसन्द है, वही बालकों को भी पसन्द है। हमारी रुचि-अरुचि

ही बालक की भी रुचि-अरुचि है। हमारा धर्म ही बालक का भी धर्म है। इस तरह बालकों पर अपने विचार लाद कर हम बहुत ही गम्भीर भूल करते हैं।

बालकों के अपने भाव इतने सूक्ष्म होते हैं कि उनको व्यक्त करना उनके लिए बहुत कठिन हो जाता है, वे कुछ ऐसी बातों को लेकर रोने या हाथ-पैर पीटने लगते हैं कि हम सहसा कुछ समझ नहीं पाते, अथवा समझने की कोशिश भी नहीं करते। हम उसको झगड़ालू कह कर या तो दूर भगा देते हैं, या उसको मार-पीट देते हैं। निश्चय ही अपने इस व्यवहार से हम बालक का दिल तोड़ देते हैं। हममें से हर एक का यह अनुभव है कि कभी कभी बालक ऐसी कोई चीज माँगता है, जो हमारी समझ में नहीं आती। अपनी तरफ से बालक इशारे करता रहता है, और हम हैं कि उस पर नाराज़ होते रहते हैं। बालक अपनी तोतली और टूटी-फूटी बोली में कुछ समझाना चाहता है, पर जवाब में हमारी नाराजी बढ़ती जाती है। जब बालक तरह तरह की चेष्टाएँ करके अपने मन की बात प्रकट करना चाहता है, तब हम उसके सामने देखते तक नहीं हैं अथवा उसकी बात को हँसकर टाल देते हैं। इस तरह निराश बना हुआ बालक ज्यादा ज़िद करता है, तो उसको ज्यादा मार पड़ती है, और वह रो-रोकर सो जाता है। आखिर जब अपनी चाही हुई चीज उसको कहीं से अचानक ही मिल जाती है, तो उसकी खुशी का ठिकाना नहीं रहता, और वह सारे घर को आनन्द से भर देता है, वह इशारा करके अपनी तोतली बोली में कहता है : 'मुझको तो इसकी ज़रूरत थी। उसकी ऐसी क़ीमती चीज़ में या तो काँच का कोई टुकड़ा होता है, या एकाध फूटी कौड़ी होती है ! बाद में हम पछताते हैं और कहते हैं कि अरे, हम इतनी-सी बात भी समझ नहीं सके और हमने दो घण्टों तक अपने बालक को रुलाया ! लेकिन यह सब तो रोज़-रोज़ होता ही रहता है। हम कोई एक बात समझते हैं, जबकि बालक के ध्यान में कोई दूसरी ही बात होती है। बालक हम से एक चीज माँगता है, और हम उसको दूसरी चीज़ देते हैं। बालक के मन की भावना के प्रदेश को जानने-समझने के लिए हम को आवश्यक प्रयत्न करने चाहिए। जब हम एक बार बालक की दृष्टि से देखना शुरू कर देंगे, तो हमारे और बालक के बीच की ग़लतफ़हमियाँ दूर हो सकेंगी, और दोनों पक्ष सुखी बन सकेंगे।

आपको एक बात और सुझाना चाहता हूँ। आप अपने बालक को कभी ऊधमी या हठी मत मानिए। आप तो यही मानकर चलिए कि बालक कभी ऊधमी होता ही नहीं है। बालक को हठीला तो हम ही बनाते हैं। यदि हम अपने अनुभवों पर दृष्टि डालेंगे, तो हमको पता चलेगा कि बालकों को ऊधमी और हठीला बनाने का ज्यादा काम तो हमीं करते हैं। जब बालक हमारा चाहा या कहा हुआ काम नहीं करता, तो हम उसको उधमी या तूफानी कहते हैं। जब बालक हमारे घर आए मेहमान के लिए पानी नहीं लाता, तो हम उसको ऊधमी की उपाधि दे देते हैं। जब बालक घर के सामान को तोड़ता-फोड़ता है, दूसरों को परेशान करता है, या कहीं भटकने के लिए चला जाता है, तो हम उसको उपद्रवी कहने लगते हैं। इसी तरह जब बालक अपना मन-चाहा काम करता है, और अपनी मन-सोची बात को छोड़ता नहीं है, तो हम उसको हठीला कहते हैं। इसमें सच्चाई यह है कि ये दोनों बातें गुणरूप हैं। अगर अमुक एक उमर में ये गुण बालक में न हों, तो उसका विकास नहीं हो पाता। लेकिन दुःख की बात यह है कि हमने इनको दोष मान लिया है। सत्ता की सख्ती बालक को अच्छी नहीं लगती। बालक तुरन्त ही समझ जाता है कि उसको किसका सम्मान करना है, और किसका नहीं करना है। यही कारण है कि वह हमारी अनुचित सत्ता का विरोध करता है, अथवा मेहमान की परवाह न करके हमारी बात पर ध्यान नहीं देता। जब बालक तोड़-फोड़ करता है, उस समय वह कोई ऊधम नहीं करता, बल्कि वह अपनी क्रिया प्रधान वृत्ति को सन्तुष्ट करना चाहता है। वह अपनी इस वृति के विकास की खोज में रहता है। इधर-उधर भटकने की इच्छा रखने वाला बालक या तो हमारे घर को पसन्द नहीं करता है, या अपनी शारीरिक कसरत की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए इधर-उधर दौड़ता-भटकता है। जो बालक बिगड़ा नहीं है, उसके बारे में हम यही सोच सकते हैं कि अपनी पसन्द का काम करने वाला बालक कोई ग़लत काम नहीं करता। अगर वह किसी को नुक़सान नहीं पहुंचाता है, कोई पापपूर्ण काम नहीं करता है, अपने आपको किसी असा-धारण संकट में नहीं डालता है, तो वह अपनी पसन्द का काम भले ही करता रहे, हम उसमें बाधक क्यों बनें? यह उचित नहीं कि हम बालक को उसकी पसन्द का काम न करने दें, और उससे अपनी पसन्द का ही काम करवाएँ।

बालक अपना सोचा काम ख़ुद करें, और वे वह काम हम से करवाएँ, इन दोनों बातों में फ़रक़ है। हमको इस बात का विचार अवश्य करते रहना चाहिए कि हम बालक का चाहा काम कब करें और कब न करें। हमको न तो बालक का गुलाम बनना है, और न उसके विकास में अपनी तरफ से कोई बाधा ही खड़ी करनी है। यह प्रश्न विवेक का प्रश्न है। इसको हमें प्रत्येक माता-पिता की विवेक-बुद्धि पर छोड़ देना चाहिए। आप अपने बालक को स्वतंत्र अवश्य बनाइए। आप बीच में पड़कर उसके बदले ख़ुद कोई काम मत कीजिए। बालक के प्रति आपका जो प्रेम है, प्यार और दुलार है, वह उसको अपंग बनाने के लिए नहीं है। वह अपनी मरज़ी से जो भी कुछ करना चाहे, आप उसे करने ही दीजिए। यही नहीं, बल्कि बालक जो काम ख़ुद कर सकता है, उसको वह स्वयं ही करने लगे, और आप से करवाना छोड़ दे, इसकी व्यवस्था आप पूरी तत्परता से कर दीजिए। अपने जीवन के बारे में बालक हम पर तनिक भी निर्भर न रहे, इसकी चिन्ता हम को रखनी चाहिए। हम बालक की आया बन कर उससे उसकी स्वाधीनता न छीनें। यह बहुत जरूरी है कि हम स्वतंत्रता के अर्थ को अच्छी तरह समझ लें। हम यह समझें कि स्वतंत्रता का अर्थ निरंकुशता नहीं है। आप कभी भूले-चूके भी यह मत मानिए कि अगर आपका बालक आपको मारता-पीटता है, तो उसको मारने-पीटने देकर आप उसको मॉन्तेस्सोरी-पद्धति की स्वतंत्रता दे रहे हैं! गारे-मिट्टी से सने जूते पहनकर कालीन पर चलने की स्वतंत्रता का उपभोग बालक कभी कर ही नहीं सकता। मॉन्तेस्सोरी-पद्धति में किसी बालक को यह आज़ादी मिलती ही नहीं कि वह किसी को काटे। इसी तरह इस पद्धति में बालक न तो चोरी करने के लिए स्वतंत्र है और न गाली बकने के लिए ही स्वतंत्र है। ऐसे काम वह कर ही नहीं सकता। इस पद्धति में ऐसे बालक नीच-वृति के माने जाते हैं। ऐसी वृति को और उसके मूल में रही शक्ति को हम उन्नत अवश्य बनाएँ, पर उसका अभिनन्दन तो कभी करें ही नहीं। स्वतंत्रता के बारे में आप बार-बार विचार करके हमसे पूछते रहेंगे, तो हम आपको उचित स्पष्टीकरण देने का प्रयत्न करेंगे।

आपको एक युक्ति सुझाता हूँ। बालक के साथ व्यवहार करने में आप एक बात का पूरा ध्यान रखिए। बात यह है कि बालक को सौ बार 'हाँ' कहना

अच्छा, लेकिन एक बार की भी 'ना' अच्छी नहीं। आज तो हम इस कहावत को मानकर अपना सारा व्यवहार चलाते हैं कि 'एक 'ना' सौ बुराइयों को दूर करती है।' बालक जब-जब भी खुद ही कुछ करना चाहे, तब-तब आप उसको 'हाँ' ही कहिए। हम बिना किसी कारण के कुछ निर्दोष कामों के बारे में भी बालक को 'ना' कहकर उसको बहुत दुखी बना देते हैं। अपने मन में हम यह भय न रखें कि 'हाँ' कहने पर बालक वह काम भी कर बैठेगा, जिसको करने की स्वीकृति हमने उसको दी नहीं है। आप 'हाँ' कहिए, और एक बार बालक को समझा दीजिए कि उसको काम किस तरह करना है। फिर तो बालक बड़े आदमियों की तरह ही अपना सब काम पूरी जिम्मेदारी के साथ करेगा। इनकार करना हो, तो गहरे सोच-विचार के बाद ही इनकार कीजिए। जिस काम के लिए बाद में अनुमति देनी पड़े, उसके लिए पहले इनकार करके बाद में स्वीकार मत कीजिए। एक बार स्वीकार करके इनकार करने में जो नुकसान है, उससे अधिक नुकसान इनकार करके फिर स्वीकार करने में होता है। ऐसी स्थिति में बालक सीख जाता है कि इनकार को स्वीकार में कैसे बदला जा सकता है। वह समझ जाता है कि रोने, रूठने और हाथ-पैर पटकने से उसका काम बन सकता है। हम बालक को इनकार तभी करें, जब उससे खुद बालक की, समाज की और नीति की कोई हानि होने का भय रहे या सम्भावना रहे। हम बालक के प्रति बहुत अविश्वास रखते हैं। हम सोचते हैं कि बालक के हाथों कोई चीज़ टूट या फूट जाएगी, वह अमुक काम कर नहीं सकेगा, या काम करते समय उसको कहीं चोट लग जाएगी, अथवा अमुक कोई काम तो बालक कर ही नहीं सकता आदि-आदि। अपने इन विचारों के कारण हम बालक को कोई भी काम सौंपने से कतराते हैं। और कभी सौंपना ही पड़ जाए, तो बड़ी आनाकानी के बाद या अपना अविश्वास व्यक्त करके ही सौंपते हैं। इसके कारण बालक के मन में अपने प्रति अश्रद्धा उत्पन होती है वह अपनी शक्ति खो बैठता है, और आगे चलकर नालायक साबित होता है। दो बालकों में से एक की तारीफ करके और दूसरे की निन्दा करके हम एक के मन में अति श्रद्धा का और दूसरे के मन में अश्रद्धा का भाव उत्पन्न कर देते हैं। निन्दा से बालक की आत्मा सिकुड़ जाती है और स्तुति से बालक उद्धत बन जाता है। हमको इन दोनों बातों को छोड़ना ही चाहिए।

यहाँ मैं माता-पिता की एक बुरी आदत की तरफ उनका ध्यान खींचना चाहता हूँ। अक्सर माता-पिता अपने बालकों को घर आए मेहमानों या मित्रों के सामने पेश करते हैं, और उनसे कहते हैं कि वे कुछ बोलें, गाएँ, अपना कोई काम दिखाएँ, आदि-आदि। हो सकता कि ऐसा करवाने से मित्रों को कुछ खुशी हो, लेकिन इससे बालक को तो बहुत अधिक नुक़सान होता है। इससे बालक दिखावे का शौक़ीन बन जाता है। उसको यह आदत पड़ जाती है कि जब कोई तारीफ़ करके देखनेवाला होता है या जब कोई प्रोत्साहित करता है, तभी उसको काम करना अच्छा लगता है। इस तरह वह नाटक करने वाला बन जाता है। बहुतेरे माता-पिता अपने बालकों पर इसलिए गुस्सा होते हैं कि उनके बालक दूसरों को अपनी विद्या दिखा कर उनको खुश नहीं करते, अथवा वैसा करने से इनकार कर देते हैं। वे बालकों को इनाम देकर उनसे काम करवाने को कोशिश करते हैं, या नाराज़ होकर बालकों को मारते-पीटते भी हैं। बालक न तो माता-पिता के लिए हैं, और न मेहमानों के लिए हैं। हम अपने बालक-रूपी राजाओं को उनकी इच्छा के विरुद्ध दूसरों को खुश करने के लिए विवश क्यों करें? ऐसा करके हम अपने बालकों को गुलामी का सबक़ सिखाते हैं। यह तो अपने अभिमान को संतुष्ट करने का एक अप्रत्यक्ष उपाय है। बाल-मन्दिर में बालक इसलिए सुन्दर और सुशील नहीं बनता कि उस पर इस प्रकार की शस्त्र क्रिया की जाए। बालक की शक्ति सबसे पहले उसके अपने आनन्द के लिए है। यह आनन्द हमको सहज ही मिलता हो, तो हम भले ही उसका लाभ लें। हम अपने बालकों को अपने खिलौने हरगिज़ न बनाएँ। हम खुद भी उनके खिलौने न बनें।

आपको बहुत कष्ट दिया। सिखावन तो इतनी दी कि आपको अपच ही हो जाए। फिर भी अभी कहने को तो बहुत-कुछ बचा ही है। लेकिन अब मैं आपको कुछ व्यावहारिक बातें कहूँगा। आप अपने बालक को ख़ब साफ़-सुथरा रखिए। गन्दगी और क्षय की बीमारी का विचार एक ही साथ कीजिए। निर्भयता शिक्षा का प्राण है। अपने घर में आप इस सूत्र को बराबर लटका कर रखिए। आप अपने मन से यह बिचार निकाल ही दीजिए कि छोटे बच्चों की ग़ैर हाज़िरी भले ही चलती रहे। आप ऐसी व्यवस्था कर

दीजिए कि जिससे बालक बाल-मन्दिर में नियमित रूप से आ सके। लेकिन बच्चे को उसकी इच्छा के विरुद्ध बाल-मन्दिर में मत भेजिए ।

जाति-भोज के कारण, घर में नए भाई के जन्म के कारण या ऐसे ही दूसरे पारिवारिक कारणों से बालक को दस दिनों तक घर में मत रोकिए। आप अपने बालक को घर में कुछ सिखाइए-पढ़ाइए मत। एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं। हमारी रीति अलग, आपकी रीति अलग। जब आप बालक को अपने घर में ही पढ़ाना चाहें, तो उसको बाल-मन्दिर से हटा लीजिए। ख़ुद डॉक्टर या वकील न होने पर भी अगर आप अपना इलाज और अपनी वकालत ख़ुद ही कर सकते हों, तो उसी हालत में आप स्वयं शिक्षक न होते हुए भी अपने बालक को पढ़ाने की धृष्टता कर सकते हैं! हमारे हाथ में नाव सौंप देने के बाद स्वयं निश्चिन्त रहने की श्रद्धा आप के अन्दर न रही, तो आपकी नाव डूबेगी। दो घोड़ों की सवारी मत कीजिए, नहीं तो आप दोनों तरफ लटक कर रह जाएँगे। अपने बालक को बाल-मन्दिर में भरती कराने के बाद अगर कुछ ही दिनों में आप उससे यह पूछेंगे कि उसने क्या-क्या पढ़ लिया है, तो आपकी भी वही हालत होगी, जो पौधे को ज़मीन में रोप देने के बाद कुछ ही दिनों में उसकी बढ़ी हुई जड़ों को देखने के लिए पौधे को उखाड़ने वालों की होती है। जब अपनी श्रद्धा से आप हमारे प्रयत्न रूपी वृक्ष का पोषण करेंगे, तभी बढ़िया फसल आएगी। असन्तोष से दूर रहिए। स्वार्थी हितैषियों को पहचानते रहिए। यदि आपके अन्दर श्रद्धा होगी, तो जिस चीज़ के दर्शन हमको दूसरे बालकों में हुए हैं, उसको आपके बालकों में भी देखने का सौभाग्य हमको प्राप्त होगा। हम आपसे और कुछ नहीं माँगते—एक ही वस्तु माँगते हैं, और वह है, अविचल श्रद्धा। आपके परिवार की स्त्रियाँ थक जाएँगी, दूसरे विद्यालयों के शिक्षक आपको डिगाना चाहेंगे, 'ट्यूशन' करने वाले अपने स्वार्थ के लिए आपको बिगाड़ेंगे, किन्तु आप जाग्रत रहिए।

आप समय निकाल कर बार-बार हमारा बाल-मन्दिर देखने के लिए आते रहिए, और कहीं हमसे कोई भूल या ग़लती हो रही हो, तो उसको

तरफ हमारा ध्यान खींचते रहिए। अपने बालक के बारे में आप हमारे साथ दिल खोलकर बात कीजिए, अपनी कठिनाइयाँ हमको बताइए और निडर होकर हमसे लड़िए। अपने बालक के बारे में आप भी हमसे कुछ छिपाइए मत। आप जितनी फिकर रखेंगे, बाल-मन्दिर को और बालक को उतना लाभ ही होगा। बालक को बाल-मन्दिर में भरती करा देने के बाद स्वयं निश्चिन्त होकर सो जाने की नीति को आप कभी मत अपनाइए। आप अपने परिवार के सब लोगों में इस काम के लिए रुचि उत्पन्न करते रहेंगे, तो हम निश्चय ही सफल हो सकेंगे।

•

माताओं से

बाल-मन्दिर में आने वाले बालकों के बारे में मैं उनकी माताओं से कुछ बातें कहना चाहता हूँ। मान लीजिए कि हम सोए हैं, और हमारी उसी हालत में किसी जादू के ज़ोर से या किसी राक्षसी माया के प्रभाव से कोई हमको किसी अनजाने राक्षस के देश में ले जाए और हमको वहीं छोड़ दे। जब हम वहाँ जागें और देखें, तो हमको पता चले कि हम तो राक्षस के देश में आ पड़े हैं। ऐसी स्थिति में सोचिए कि हम कितने भयभीत और त्रस्त हो उठेंगे ?

वहाँ तो हमको अपने चारों ओर बड़े-बड़े राक्षस ही दिखाई देंगे। वहाँ उनके घरों के ज़ीने भी बड़े होंगे। उनकी आलमारियाँ भी बड़ी होंगी। उनके पनियारे भी बड़े होंगे। मटके भी बड़े-बड़े ही होंगे। हम तो उन राक्षसों के पैरों के घुटनों तक भी पहुँच नहीं पाएँगे। हम ऐसी एक परिस्थिति में फँस जाएँ, राक्षस लोग हमको वहीं बन्द करके रखें, वहीं रहने के लिए वे हमको मजबूर कर दें, तो सोचिए कि वहाँ हम क्या अनुभव करेंगे ? वहाँ तो हमको बड़े-बड़े ज़ीनों की लम्बी-लम्बी सीढ़ियाँ मिलेंगी। राक्षस तो उन सीढ़ियों पर दनादन चढ़ेंगे और उतरेंगे, पर लम्बे-लम्बे फासलों वाली उन सीढ़ियों पर हम तो चढ़ ही नहीं सकेंगे। वहाँ की थालियाँ इतनी बड़ी होंगी कि हम तो पूरे के पूरे ही उनमें समा जाएँगे। पनियारा इतना ऊँचा होगा कि उस पर रखे हुए पानी तक हम पहुँच ही नहीं सकेंगे। मतलब यह कि वहाँ हम अपने मन का कोई भी काम कर ही नहीं सकेंगे।

आज के हमारे घरों में हमारे अपने बालकों को भी ऐसे ही सपने हमेशा आते रहते हैं। लेकिन हमारा ध्यान उनके इन सपनों की तरफ़ जाता ही नहीं। हमारे घरों में बालकों के लिए सब कुछ ऐसा ही होता है। खूँटियाँ ऊँची होती हैं। पनियारे इतने ऊंचे और बड़े होते हैं कि बालक उनके पास पहुँच ही नहीं सकते। आलमारियाँ इतनी बड़ी-बड़ी होती हैं कि बालक उनका उपयोग कर ही नहीं पाते। घर की सारी व्यवस्था और सारा साज-सामान भी ऐसा होता है कि बालक बरबस सोचने लगते हैं कि यह मनुष्यों की दुनिया है, या किसी राक्षस का देश है ?

ऐसी जगहों में बालक को हमेशा अपने लिए कुछ-न-कुछ माँगना पड़ता है। उसको पानी पीना हो, तो चूँकि पनियारे बहुत ऊँचाई पर होते हैं, इस-लिए पानी उसको माँगना पड़ता है। खटिया इतनी बड़ी होती है कि जब बालक उस पर सोना चाहता है, तो उसको घर के बड़ों से कहना पड़ता है कि वे उसके लिए खटिया बिछा दें। रसोईघर में भोजन के समय लगाने के पाटे इतने बड़े और भारी होते हैं कि वह ख़ुद उनको लगा नहीं सकता। ज़ीने की सीढ़ियाँ इतनी बड़ी-बड़ी और लम्बे फासल वाली होती हैं कि वह जब चाहे तब उन पर आसानी से चढ़-उतर नहीं पाता। इस तरह घर के उपयोग के लिए जुटाया गया अधिकतर सामान ऐसा होता है कि बालक ख़ुद उसका उपयोग कर नहीं सकता। ऐसी स्थिति में बालक क्या करे ?

सच है कि कई घरों में बालकों के लिए प्रेम-पूर्वक और उदारता-पूर्वक ऐसे खिलौनों का प्रबन्ध किया जाता है, जिनसे बालक खेल सकें। बालकों से कहा भी जाता है कि वे घर के किसी एक कोने में बैठकर उन खिलौनों के साथ खेला करें। लेकिन ये खिलौने बालकों को लम्बे समय तक सन्तुष्ट नहीं कर पाते। अक्सर देखा यह जाता है कि जब इन खिलौनों से खेलते-खेलते बालकों का मन ऊब जाता है, तो वे इनको तोड़-फोड़ डालते हैं, अथवा गुस्से में आकर इनको दाँतों से चबा डालते हैं और फेंक देते हैं।

यदि आप यह अनुभव करें कि बात तो सच है कि घर में बालक के लिए जैसा चाहिए वैसा एक भी कोना कहीं होता नहीं है, और घर में जो भी साज-सामान रहता है, वह बालक के लिए बहुत बड़ा और भारी होता है, तो आपको अपने घर की व्यवस्था में ज़रूरी सुधार कर लेना चाहिए। बालक ख़ुद जिनका उपयोग आसानी से कर सके, ऐसे छोटे-छोटे बरतन, छोटी

लोटियाँ, छोटी थालियाँ, छोटी कटोरियाँ, छोटी मोगरी; छोटे भाड़ू, छोटे सूप, छोटी बालटियाँ, आदि सामान घर में उनके लिए सुलभ करना चाहिए। क्योंकि अपने घरों में हम जो भी काम करते हैं, हमारे घरों में रहने वाले बालक भी वे सब काम करना चाहते हैं। अक्सर, माता के नाते आपने देखा होगा कि बालक रोटी बेलने, कढ़ी हिलाने, बरतन माँजने, बरतन धोने और भाड़ू लगाने—जैसे काम बड़ी तत्परता के साथ करना चाहता है। लेकिन चूँकि इन सब कामों के लिए घरों में सारा सामान बड़ों के लायक होता है, इसलिए इस डर से कि कहीं बालक को कोई चोट न लग जाए, हम उसको ये सारे काम करने ही नहीं देते। बाद में जब हम उससे ऐसा कोई काम करने के लिए कहते हैं, तो वह उलटकर जवाब देता है, और कहा हुआ काम करता नहीं है। ऐसी स्थिति में हम यह अनुभव करते हैं कि बालक हमारा कहा हुआ काम करने से कतराता है।

बालक का सहज स्वभाव तो यह है कि वह घर में घर का हर काम करना चाहता है। पाटे या आसन बिछाने और भाड़ने-बुहारने-जैसे कामों में उसका मन लगता है। लेकिन इस डर से कहीं उसको चोट न लग जाए, अथवा वह कोई तोड़-फोड़ या नुक़सान कर दे, उसे काम करने से रोक दिया जाता है। इससे नाराज़ होकर वह तुरन्त ही रोने लगता है, और फिर कुछ देर के बाद चुप भी हो जाता है। लेकिन अपने इस अनुभव के बाद जब माँ-बाप बालक से कोई काम करने के लिए कहते हैं, या कोई चीज कहीं से ले आने को कहते हैं, तो बालक न तो कहा गया काम करता है, और न वह चीज़ ही खोज कर लाता है, जो उसको लानी होती है। जब हमारी तरह बालक भी घर में कोई काम करना चाहे, तो उसको काम करने की पूरी सुविधा देनी चाहिए, और वह अपने मनपसन्द काम कर सके, इसके लिए घर में उसके उपयोग के लायक छोटे-छोटे साधन जुटा देने चाहिए। किन्तु जब घर में उसके उपयोग के लायक कोई साधन नहीं होते, और घर की सारी चीज़ें उसकी ताकत के हिसाब से बड़ी, भारी और दूर-दूर रखी रहती हैं, तब उसको अपनी ज़रूरत की चीज़ें हम से बार-बार माँगनी पड़ती हैं। लेकिन ऐसी हालत में हमको लगता है कि बालक नाहक़ हमारा सिर

खाता रहता है। किन्तु अपने अनुभव के आधार पर मैं यह कह सकता हूँ कि अगर बालक के काम की सारी चीज़ें छोटी-छोटी हों, और घर में उसके लिए आवश्यक सुविधाएँ कर दी जाएँ, तो बालक अपनी रुचि के काम खुद ही करता रहेगा, और आपको ज़रा भी परेशान नहीं करेगा।

यहाँ बाल-मन्दिर में सारे साधन इस तरह से व्यवस्थित रखे जाते हैं कि बालक अपनी इच्छा के अनुसार जब चाहे तब उनका उपयोग कर सकता है। वह खुद ही अपना आसन बिछा लेता है, और उस पर बैठता है। उसको जितने और जैसे साधनों की ज़रूरत होती है, उतने और वैसे साधन वह खुद ही जुटा लेता है, और उन साधनों की मदद से वह मजे के साथ खेलता रहता है। खेल चुकने के बाद वह उन साधनों को फिर उनकी जगह पर रख देता है। इस विषय में मुझे उसको कुछ कहना ही नहीं पड़ता।

बालक का यह स्वभाव ही नहीं है कि वह कहीं चुपचाप बैठा रहे। वह तो कुछ-न-कुछ काम करना चाहता है। कई धनी-मानी लोगों और बड़े माने जाने वाले लोगों के परिवारों में प्रायः यही मान लिया जाता है कि बालकों को कुछ काम तो खुद करने ही नहीं चाहिए। ऐसे कई परिवारों में तो बालकों को नहलाने, उनके बालों में कंघी करने, उनको कपड़े पहनाने और बूट-मोजे पहनाने जैसे काम भी घर के बड़े-बूढ़े लोग या नौकर ही करते रहते है। अगर कोई आदमी हमारा खाना चबा-चबाकर हमारे मुँह में रखने की नौकरी करना चाहे, तो क्या हम ऐसे नौकर को रखना पसन्द करेंगे? हम तो ऐसे नौकर को फ़ौरन ही इनकार कर देंगे। लेकिन घरों में अपने बालकों को सब कुछ हमीं चबा-चबा कर देते रहते हैं। हम ख़ुद ही उनके सारे काम कर दिया करते हैं। यह सोचकर कि कहीं बालक को चोट न लग जाए, उसके कपड़े ख़राब न हो जाएँ, वह घर के किसी काम में बाधक न बन जाए या उसके हाथों कोई काम बिगड़ न जाए, हम अपने घरों में बालकों को काम करने से रोकते रहते हैं। उनको बार-बार मना करते रहते हैं। असल में हमको अपने मन में यह डर रखना ही नहीं चाहिए कि बालक को चोट लग जाएगी, या वह कोई काम ठीक से नहीं कर पाएगा, या उसको बिगाड़ देगा। हमको तो केवल इतनी सावधानी रखनी है कि बालक

को ख़ुद काम करने का सन्तोष मिले और उसका जीवन किसी संकट में न फँसे।

कहा गया है कि 'दिल जलाने से हाथ जलाना बेहतर है'। मतलब यह है कि बालक खुद कोई तोड़-फोड़ करे, इससे अच्छा यह है कि हम उसके सब काम कर दिया करें। लेकिन यह खयाल ग़लत है। ऐसा करने से बालक खुद अपने काम करना सीख नहीं पाता। सच्ची माता वही है, जो बालक को उसके सब काम ख़ुद ही कर लेना सिखा देती है। जिन कामों को दो बरस का बालक खुद कर सकता है, उनको वह खुद ही क्यों न करता रहे ?

यूरोप के एक विद्यालय में तीन-चार साल की उमर वाले बालक अपना भोजन खुद ही काँच के बरतनों में परोसकर खाते हैं, और खा चुकने पर ख़ुद ही उन बरतनों को साफ़ करके उनकी जगह पर रख देते हैं। यह सब करते हुए वे अपने इन बरतनों को टूटने-फूटने भी नहीं देते। अगर यूरोप की एक बहन कुमारी मारिया मोण्टीसोरी के बालघर की बातें मैं आपको सुनाऊँ, तो सुनकर आप दंग रह जाएँगे। आपको वे बातें अपनी इस दुनिया की नहीं, बल्कि किसी स्वर्ग की बातों-सी लगेंगी। वहाँ छोटे-छोटे बालक अपने हाथों अपने बालों में कंघी करते हैं, अपने हाथों अपने बूट पहनते हैं, और बूटों के बन्द भी वे ही खोलते और बाँधते हैं। इसके बिल्कुल उल्टे, यहाँ हमारे इस बाल-मन्दिर में साढ़े पाँच साल की उमर वाली ऐसी लड़कियाँ आती हैं, जिनकी माताएँ अब तक उनको अपने हाथों नहलाती हैं। वे उनके बालों में कंघी करती हैं, उनको कपड़े पहनाती हैं, और उनके दूसरे सारे काम भी वे ही कर दिया करती हैं। असल में होना यह चाहिए कि ये लड़कियाँ अपने सारे काम ख़ुद ही करने लग जाएँ।

हमारे बाल-मन्दिर में पानी से भरी एक कोठी रखी रहती है। उसमें से पानी लेकर बालक खुद ही अपने हाथ-मुँह धो लेते हैं और खुद ही साफ़-सुथरे रह लेते हैं। इसलिए अपने इस अनुभव के आधार पर मैं यह कहना चाहता हूँ कि अगर हमारे घरों में भी बालकों के लिए अपने सब काम खुद ही कर लेने की सुविधाएँ खड़ी कर दी जाएँ, तो धीमे-धीमे बालक नहाने, हाथ, पैर,

मुँह आदि साफ रखने और अपने कपड़े पहनने जैसे सारे काम ख़ुद ही करना सीख जाएँगे। उनके रोज़-रोज़ के जीवन से जड़ी सारी परेशानियाँ दूर हो जाएँगी और माँ-बापों की सारी सिरपच्ची भी हमेशा के लिए खतम हो जाएगी।

मेरी अपनी भी एक गृहस्थी है। मैं भी अपने अनुभव से यह जानता हूँ कि घर में बालक कुछ-न-कुछ माँगते ही रहते हैं। वे हमको बराबर हैरान और परेशान करते रहते हैं। हमारा सिर पचाते रहते हैं। लेकिन अगर उनको खद ही अपना काम करते रहने का रास्ता दिखा दिया जाए, और उनके मार्ग में आने वाली कठिनाइयाँ दूर कर दी जाएँ, तो वे ज़रूर ही अपने सब काम ख़ुद ही करना सीख जाएँगे। हमारी ग़लती यह है कि हम उनको ग़ुलामों की तरह पराधीन हालत में रखते हैं। घर में अपने सारे काम ख़ुद ही कर लेने की अनुकूलता आप उनके लिए कर दीजिए।

चूँकि बालकों के हाथ-पाँव छोटे होते हैं और उनकी शक्ति भी कम होती है, इसलिए वे अपने सारे काम फुर्ती के साथ नहीं कर सकेंगे। जितनी अच्छी तरह करने चाहिए, उतनी अच्छी तरह से भी नहीं कर पाएँगे। फिर भी वे जो काम अपने लिए करते हैं, उनसे उनको सन्तोष होता है। उनके इस सन्तोष को देखकर हमको भी सन्तुष्ट होना चाहिए। यहाँ अपने इस बाल-मन्दिर में मैं देखता हूँ कि बालक अपनी रुचि के सब काम अपने आप, अपने दिल के सच्चे रंग के साथ करते रहते हैं। इसलिए आपसे मेरा विशेष अनुरोध यह है कि आप अपने घरों में भी बालक जिन कामों को अपनी रुचि के साथ करना चाहें, और जिन कामों में कोई गम्भीर खतरा न हो, उन कामों को करते रहने की सुविधाएँ उनको ज़रूर दीजिए।

यहाँ अपने इस बाल मन्दिर में बालकों को संस्कारी बनाने के हमारे प्रयत्न तो दो घण्टों के ही होते हैं। इसके विपरीत, आपके प्रयत्न बाईस घण्टे चलते हैं। यदि इन दो प्रयत्नों के बीच कोई विरोध रहेगा, तो हम अपने बाल मन्दिर में कुछ कर भी नहीं सकेंगे। किन्तु यदि आप हमारे काम के प्रति अनुकूल रहेंगी, और अपने घर में भी बालकों के साथ आप वैसा ही अनुकूल

व्यवहार किया करेंगी, तो निश्चय ही अपने इस काम में हमको सफलता मिलेगी ।

माता-पिताओं को इस बात की पूरी जिम्मेदारी उठा लेनी चाहिए कि उनके बालक पूरी तरह साफ़-सुथरे रहें। लेकिन हमारा अनुभव यह है कि कई बालक आज भी अपने घरों से यहाँ गन्दी हालत में ही आते हैं। अपने यहाँ काम करने वाली बहनों की मदद से हम ऐसे बालकों को साफ़-सुथरा रखने की व्यवस्था करते हैं। स्वच्छता की दृष्टि से माताओं को इस बात की ख़बरदारी रखनी ही चाहिए कि बालक की आँखें साफ रहें, दाँत साफ रहें, कानों में मैल या पीब न रहे, और सिर के बालों में रूसी न रहे। इन सबकी सफाई रोज-रोज होनी ही चाहिए। बच्चों के कपड़े साफ़ रहें, बटन साबूत रहें, और फटे हुए कपड़ों की मरम्मत होती रहे। माताओं को इन सब बातों का ध्यान रखना चाहिए। बालकों के नाख़ून बार-बार कटने चाहिए। यदि इन सब बातों में कोई कमी-ख़ामी रहती है, तो इसमें दोष बालकों का नहीं, बल्कि माँ-बापों का ही माना जाएगा।

बहनो ! हमारे घरों में बालकों की स्थिति भगवान के भेजे देवदूतों की-सी होती है। सभी बालक हमारे लिए तो हमारे छोटे-छोटे देव ही होते हैं। इसलिए उनके साथ हमारा सम्बन्ध सम्मान-पूर्ण और प्रेम-पूर्ण ही रहना चाहिए। सच्चा प्रेम न तो बालकों को गहने पहनाने में है, न उनको अच्छी-अच्छी चीज़ें खिलाने-पिलाने में है, और न कीमती कपड़े पहनाने में ही है। सच्चा प्रेम इस बात में है कि हम उनको उनकी रुचि के काम करने दें, और इन कामों के लिए ज़रूरी अनुकूलताएँ खड़ी कर दें। वे जो भी कुछ करना चाहें, उस पर हम अपनी तरफ़ से कोई रोक न लगाएँ।

जब कोई बड़ा आदमी हमसे मिलने आता है, तो हम तुरन्त उठकर उसका स्वागत और सम्मान करते हैं, और उसके प्रति अपना विनय प्रकट करते हैं। किन्तु जो बालक भगवान के घर से हमारे घर में मेहमान बनकर आते हैं, उनको तो हम दुतकारते और फटकारते ही रहते हैं। हम उनके साथ विनय-पूर्वक और प्रेम-पूर्वक बात नहीं करते, और नकुछ-सी बातों को लेकर

हम उनका अपमान करते-रहते हैं। ज़रा सोचिए कि यह कितनी ग़लत चीज़ है ? इसलिए बालकों के प्रति हमारा व्यवहार प्रेम, विनय और आदर से परिपूर्ण रहना चाहिए। बालकों को छोटा मानकर हमको उनकी उपेक्षा या उनका अनादर नहीं करना चाहिए।

बहनो ! आप एक और बात भी अपने ध्यान में रखिए। यह कभी सम्भव ही नहीं है कि हम एक प्रकार का व्यवहार करें, और हमारे बालक उससे भिन्न कोई दूसरे प्रकार का व्यवहार करें। बालक हमारे सब कामों को बड़ी बारीक़ी के साथ देखते रहते हैं, और वे हमारा ही अनुकरण करते हैं। यदि हम अपने विचारों और विकारों पर अपना अंकुश लगाए रहेंगे, तो बालक भी वैसा करना सीखेंगे। हम जिस तरह बोलेंगे और जैसा काम करेंगे बालक भी उसी तरह बोलेंगे और वैसे ही काम करेंगे। जो बहनें अपने घर के सब काम नौकरों से करवाती हैं, उनके बालक पराधीन और ग़ुलाम बन जाते हैं। इसलिए यह ज़रूरी है कि बालक को अपना काम ख़ुद करने वाला बनाने के लिए हमको भी अपने सब काम ख़ुद ही करने चाहिए, और अपने बालकों के लिए हमको अपना व्यवहार, अपनी वाणी और अपने काम अच्छे रखने चाहिए।

बालकों को गलियों में और गन्दी आदतों वाले बालकों की सोहबत में घूमने-भटकने से रोकना चाहिए। गलियों में खेलने वाले बालकों के गन्दे खेलों से, और वहाँ के हलके वातावरण से हम अपने बालकों को बचा लें और उनके लिए अपने घरों में ही खेल के अच्छे-अच्छे साधन जुटा दें। बालक को हम घर में वे सब काम करने दें, जिनसे उनको कोई चोट न पहुँचे, और जिनमें किसी तरह की कोई अनीति न हो।

हमारे इस बाल मन्दिर की पढ़ाई एक नए प्रकार की पढ़ाई है। शायद यहाँ का बालक जल्दी-जल्दी न तो गिनती सीख पाएगा, और न बारहखड़ी ही सीख सकेगा, लेकिन खेल ही खेल में वह बारहखड़ी और गिनती सीख ज़रूर लेगा। आपको बालक से यह पूछने की ज़रूरत नहीं कि उसने बाल-मन्दिर में क्या सीखा है ? आप तो यह देखिए कि बालक की रुचि किस चीज़ में है, उसकी वृत्ति कैसी है, और वह क्या करना चाहता है ? उसको

जिस चीज़ की या साधन की ज़रूरत हो, वह चीज़ या वह साधन आप उसके लिए सुलभ करा दीजिए। आपका बालक यहाँ बालमन्दिर में क्या सीखता है, इसको आप जानना-समझना चाहें, तो हफ़्ते में एक दिन आप यहां आकर स्वयं सब कुछ देख-समझ लीजिए। इससे निश्चय ही आपको यह भरोसा हो जाएगा कि यहाँ आपका बालक, धीमी गति से ही क्यों न हो, पर बराबर आगे बढ़ रहा है।

बालकों की पोशाक

अब सब से पहले मैं यह बताऊँगा कि आपको अपने बालकों की पोशाक कैसी बनवानी चाहिए। आज-कल फ़ैशन का जोर बहुत बढ़ गया है। यही कारण है कि हम अंग्रेज़ों की नक़ल करके उनके ढंग की पोशाकें के पहनने लगे हैं। पुरुष कोट, पतलून, मोजे, बूट और नेकटाई वग़ैरा पहनना सीख गए हैं, और स्त्रियाँ पोलके और फ्रॉक पहनने लगी हैं। इस फ़ैशन के फेर में पड़कर वे अपनी लड़कियों को भी पोलके और फ्रॉक पहनाना पसन्द करती हैं। लेकिन इससे बहुत नुकसान होता है। हमारे देश की आबोहवा के हिसाब से यह पोशाक ज़रा भी अनुकूल नहीं है। हमारा देश गरम है। आज गरमी के इस मौसम में हम जो इतने कपड़े पहनते हैं, उनके कारण भी हमारे शरीर की गरमी बढ़ती है, और हमको पसीना आने लगता है। विलायत में तो बारहों महीने इतने ज़ोर का जाड़ा बना रहता है कि वहाँ के लोग अपने शरीर पर एक के बाद एक चार-पाँच कपड़े पहनकर भी अपने शरीर को गरम नहीं रख पाते। इसलिए जैसा देश हो, वैसी ही पोशाक पहननी चाहिए।

जब हम अपनी लड़कियों को फ्रॉक पहनाते हैं, तो उसमें एक बड़ी कठिनाई रहती है कि उसको वे ख़ुद न तो अपने हाथों पहन पाती हैं, और न उतार ही पाती हैं, क्योंकि फ्रॉक के बटन पीछे की ओर लगे रहते हैं। इसलिए जब किसी बालिका को फ्रॉक पहनना होता है, तो वह उसको किसी की मदद से ही पहन सकती है। ऐसी स्थिति में जब हम काम में लगे होते हैं, अगर उसी समय बालिका को फ्रॉक पहनना होता है, तो फ्रॉक पहनाने के लिए वह

हमको परेशान करने लगती है। अगर हमारे समान सयाने लोगों को कोई ऐसी पोशाक पहनने को कहे कि जिसमें दूसरों की मदद लेनी ही पड़े, तो हम ऐसी पोशाक पहनना कभी पसन्द करेंगे ही नहीं। क्योंकि हम बड़े लोग समझदार होते हैं, और 'हाँ' या 'ना' कहने की ताकत भी रखते हैं इसलिए कोई हमको ऐसी पोशाक पहनाता भी नहीं है। लेकिन बेचारे बालक तो नन्हें होते हैं, नादान होते हैं, वे हाँ या ना कहकर अपनी मरजी जता भी नहीं पाते हैं, इसलिए कपड़ों के मामले में उनको पराधीन रहना पड़ता है। जब आप किसी काम में लगी होती हैं, यदि उसी समय आपकी बेटी आप से कहती है कि आप उसको फ्रॉक पहना दें, तो आप उसको तुरन्त ही झिड़क देती हैं, पर तब आप यह सोचती भी नहीं हैं कि बेचारी बेटी अपना फ्रॉक अपने हाथों कैसे पहन सकती है? इस सारे पाप का कारण ग़लत पोशाक है। इसलिए लड़कियों को सामने बटन वाली चोली या पोलका और लड़कों को सादा कुरता पहनाना चाहिए।

इसके अलावा, फ्रॉक में जेब की कोई सुविधा रहती ही नहीं, इस कारण जब कभी बच्ची को कोई चिट्ठी देते हैं, तो उसको सँभाल कर रखने का काम उसके लिए बहुत मुश्किल हो जाता है। फिर, बच्ची के पास अपना एक रूमाल भी होता है, पर उसको हिफ़ाज़त के साथ रखने का सवाल उसके सामने बराबर बना रहता है। कहीं चिट्ठी या रूमाल खो न जाए, इस डर के कारण वह कोई काम कर नहीं पाती। वह किसी चीज़ का या खिलौने का भी उपयोग नहीं कर पाती। रूमाल कहीं गिर कर खो न जाए, इस डर के मारे वह उसको अपने हाथ में ही थामे रहती है। इस तरह उसके हाथ बँध जाते हैं। यह सब फ्रॉक का पाप है। इसलिए आप अपनी बेटी को ऐसा झगा या कुरता पहनाइए कि जिसकी बगल में या सामने जेब हो।

दूसरे, हम लोगों में लड़कियाँ आमतौर पर घाघरी पहनती हैं। लेकिन इसके कारण छोटी बच्चियों को सफ़ाई या आज़ादी के साथ चलने-फिरने में मुश्किल होती है। तिस पर जब घाघरी में जमीन छूने वाली झालर लगा दी जाती है, तो चलते-फिरते समय वह लड़कियों के पैरों में उलझती रहती है, जिससे वे बार गिरती-पड़ती रहती हैं। जब वे पानी भरने जाती हैं, तो

झूलती झालरों वाली उनकी घाघरी भीग जाती है, और वह उनके घूमने-फिरने में रुकावट-सी बन जाती है। ऐसी घाघरियों के कारण लड़कियाँ लड़कों की तरह आज़ादी के साथ घूम-फिर नहीं पाती हैं। हमको लड़कियों और लड़कों को समान ही समझना चाहिए। दोनों को एक-सी स्वतंत्रता और सुविधा देनी चाहिए। इसलिए दस साल की उमर तक लड़कियों को सुथनी या चड्डी पहनाने में कोई बुराई नहीं है। ऐसी चड्डी पहन कर वे आज़ादी के घूम-फिर सकेंगी।

डॉक्टरों की राय है कि बच्चों को तंग कपड़े पहनाने से उनके शरीर का सही विकास नहीं हो पाता, इसलिए जहाँ तक बने, उनको ऐसे ढीले और छोटे कपड़े पहनाए जाएँ जो ज़मीन से लग न पाएँ। जब लड़कियाँ ज़मीन को छूने वाली घाघरियाँ पहनकर लम्बे क़दम से चलना चाहती हैं, तो अकसर देखा गया है कि वे बार-बार गिर पड़ती हैं। इसलिए आगे आप अपनी लड़कियों को या तो चड्डी पहनाइए, या छोटा पाजामा पहनाइए।

बालकों के सिर पर टोपी, टोपा या चूनरी पहनाना ज़रा भी ज़रूरी नहीं है। उनके लिए तो ये सब बोझ-रूप ही हैं। इसलिए सयाने और समझदार लोगों को तो इनका उपयोग बन्द ही कर देना चाहिए। इसी तरह बालकों के लिए बूटों और मोजों की भी कोई ज़रूरत नहीं है। मान लीजिए कि हमने एक बीज बोया है। जब वह बीज एक छोटे-से पौधे के रूप में ज़मीन के अन्दर से बाहर आता है, अगर ठीक उसी समय हम उसके चारों ओर और उसके सिर पर भी पटियों की एक मजबूत बागड़ लगा दें, तो वह पौधा बिलकुल बढ़ ही नहीं पाएगा। इसी तरह बूटों और जूतों के कारण बालकों के पैरों का भी अपेक्षित विकास नहीं हो पाता। उल्टे, जूते पहनने से बालक के पैर इतने नाज़ुक और कमजोर बन जाते हैं कि आज़ादी के साथ चल-फिर भी नहीं सकता। उसको हमेशा काँटों और कंकरों के चुभने का डर बना रहता है। पैर तो हमारे पूरे शरीर का बोझ उठाते हैं। शरीर को संभालने, शरीर की सेवा करने, और शरीर का सारा बोझ उठाने का काम पैर ही करते हैं, लेकिन जब हम अपने पैरों को जूते पहन-पहन कर कोमल और नाज़ुक बना देते हैं, तो शरीर को बार-बार पैरों की फिकर रखनी

पड़ती है। उसको हमेशा इस बात की चिन्ता रखनी होती है कि कहीं कोई काँटा न चुभ जाए, कहीं जल न जाए, कहीं कोई ठोकर न लग जाए। अतएव बालकों के लिए जूते पहनने की आदत को ज़रूरी न समझा जाए।

अपने अनुभव से आपने जाना होगा कि बालकों को कपड़े पहनना ही पसन्द नहीं होता है। वे कपड़े पहनने से घबराते हैं, और उनको पहनते समय वे अकसर उकता उठते हैं। इसका कारण यह है कि परमेश्वर ने ही उनके लिए कपड़े पहनना ज़रुरी नहीं माना है। जब तक बालक अपने प्रभु के समीप होता है यानी जब तक वह दुनियादारी से बेखबर रहता है, तब तक उसको नंगा रहना, खुली हवा में घूमना, और धूप सहन करना अच्छा लगता है। बच्चों के शरीर का धर्म ही यह है कि वह खुला रहकर भगवान की बनाई प्रकृति के तत्त्वों का भरपूर उपयोग करता रहे। यदि हम इस शरीर को कपड़ों से ढँकते रहेंगे और जूतों से मढ़ते रहेंगे, तो इसका ठीक-ठीक विकास नहीं हो सकेगा। इसलिए छह-सात साल की उमर तक तो उनको बहुत कपड़े पहनाने की ज़रूरत ही नहीं है।

हमारे बाल मन्दिर में आने के बाद यहाँ कई बालक अपना पाजामा उतार देते हैं। चूँकि हम समझते हैं कि उनको पाजामे की ज़रूरत नहीं है, इसलिए उतारा हुआ पाजामा फिर ज़बरदस्ती पहनाने की कोई कोशिश हम नहीं करते, और उसको सँभाल कर एक तरफ रख देते हैं। बालक तो अपने नंगेपन में किसी तरह की कोई शर्म महसूस नहीं करते। लेकिन चूँकि हमारे मन में शर्म की बात रहती है, इसलिए हम उनको कपड़े पहनाने की कोशिश करते रहते हैं। ऐसा करने से बालक बचपन ही से शरमाना सीख जाते हैं। पर उनके लिए यह ज़रूरी नहीं है कि अपनी छोटी उमर में वे ऐसी शर्म महसूस करने लगें। हम यह देखें कि जिस तरह वे स्वाभाव से निर्दोष हैं, वैसे ही निर्दोष वे लम्बे समय तक और बड़ी उमर तक बने रहें। उनका ऐसा निर्दोष और निःसकोच बचपन जितने लम्बे समय तक बना रहेगा, उतनी उनकी उमर बढ़ेगी, और उसी हिसाब से उनका स्वास्थ्य भी अच्छा बना रहेगा। अतएव उनकी इस निर्दोष स्थिति को बनाए रखने के लिए बचपन में उनको कपड़े पहनाना ज़रूरी नहीं है।

बच्चों की पोशाक के बारे में मुझको दूसरी बात यह कहनी है कि उनके कपड़े क़ीमती नहीं होने चाहिए। क़ीमती कपड़ों से कोई फ़ायदा नहीं होता। बालक को तो कपड़ों की क़ीमत का कोई ख़याल होता ही नहीं है। उसके लिए तो क़ीमती कपड़ा भी एक कपड़ा ही है। क़ीमती कपड़ों की फ़िकर रखना भी उसके लिए आसान नहीं होता। लेकिन जब आप अपने बालक को क़ीमती कपड़े पहनाती हैं, तो आप इसके साथ यह भी चाहती हैं कि बालक इन क़ीमती कपड़ों को गन्दा न करे। इसलिए आपकी कोशिश यह रहती है कि क़ीमती कपड़े पहनकर बालक किसी एक ही जगह में बराबर बैठा रहे। आपको यह अच्छा नहीं लगता कि बालक अपने क़ीमती कपड़ों को गन्दा करे। दूसरी तरफ़, बालक को कभी यह पसन्द ही नहीं होता कि क़ीमती कपड़े पहनकर वह किसी एक ही जगह में गुपचुप बैठा रहे। इसलिए वह परेशान रहने लगता है, और मन-ही-मन बेचैनी भी महसूस करता रहता है। बालक को तो बिल्कुल ही सादे, साफ़ और मौसम के लायक कपड़े पहनाने चाहिए। गरमी के मौसम में उसको मोटे कपड़ों की जरूरत नहीं रहती। मलमल की तरह महीन और जहाँ तक सम्भव हो, सादे और साफ़ कपड़ों से उसका काम चल सकता है। क़ीमती चोली या ओढ़नी तो बार-बार धुल नहीं पाती। इसलिए मैली हो जाने पर भी उसको पहनना पड़ता है। ऐसे मैले कपड़े क़ीमती नहीं कहे जा सकते। वे सुन्दर भी नहीं लगते। माथे पर तेल के दाग़ों वाली क़ीमती चूनरी, फिर वह रेशम की ही क्यों न हो, अपने मैल के कारण और जूओं के कारण बालिकाओं के सिरों में दर्द पैदा करती है, और उनके स्वास्थ्य को बिगाड़ती रहती है।

कुछ बहनें अपने बालकों को दूसरों की निगाहों में सुन्दर और क़ीमती कपड़ों वाले दिखाने की इच्छा से उनको क़ीमती और जरूरत से ज्यादा कपड़े पहनाती रहती हैं। लेकिन हमारे बालक इसलिए नहीं हैं कि वे दूसरों को ख़ूबसूरत दिखाई दें इसलिए बालकों की पोशाक तो वही अच्छी है, जो उनके लायक हो, उनको अच्छी लगे, और जो मौसम के हिसाब से मुनासिब हो।

बालकों की स्वच्छता

बालकों की स्वच्छता के बारे में भी मुझको आप से कुछ बातें कहनी हैं। आज हमारा देश दम्भी बन गया है। जब आप कभी अपनी जात-बिरादरी में भोजन के लिए जाती हैं, अपनी किसी सहेली से मिलने जाती हैं, बाल-मन्दिर देखने आती हैं, या सभा में भाषण सुनने जाती हैं, तो आप ख़ूब बन-ठनकर घर से निकलती हैं। यह जो आपकी आदत है, यह भी आप तक ही सीमित है। दूसरों से उसका कोई सम्बन्ध नहीं। लेकिन सफाई का सवाल तो हमेशा के लिए है, और हर क्षण के लिए है। भगवान ने हमको जो शरीर दिया है, अगर हम उसको हमेशा साफ़-सुथरा नहीं रखते हैं, तो हम भगवान की निगाह में गुनहगार बनते हैं। बालक को हमेशा साफ-सुथरा रखना हमारा धर्म है। उसी में हमारा स्वार्थ भी है। अगर हम उसको साफ-सुथरा नहीं रखेंगे, तो वह बीमार पड़ेगा। उसको साफ रखने से वह स्वस्थ रहेगा। आपको यह बात समझाने की जरूरत नहीं है कि इसी में हमारा स्वार्थ भी समाया हुआ है। यहाँ मैं आपको यह बता दूं कि हमको किस-किस प्रकार की सफाई रखनी है।

सफाई का मतलब यह नहीं है कि सिर के जो बाल बहुत दिनों से धुले नहीं हैं, उनमें तेल डालकर कंघी कर ली जाए, और उनको थोड़ा सँवार लिया जाए। नाख़ूनों में मैल भरा हो और हाथ साबुन से धो लिए जाएँ। कान में मैल हो, आँख में कीच हो, नाक गन्दी हो, फिर भी साबुन से मुंह धोकर पावडर चुपड़ लेने से कोई सफाई नहीं है। आप ध्यान से देखेंगी, तो आपको पता चलेगा कि इस तरह की गन्दगी बालकों में बहुत पाई जाती है। कानों में मैल भरा रहने से कान बहने लगते हैं, और वे बहरे बन जाते हैं। आजकल ऐसे कई बालक पाए जाते हैं, जिनके कानों से पीव बहता रहता है। आँखों में कीच बनी रहती है, तो उनमें कील और फूली पड़ जाती है। इसलिए बालकों की आँखों को, और नाक, कान, नाख़ून, मुंह, दाँत आदि को रोज़-रोज़ अच्छी तरह देखकर इन सबको साफ रखना ही चाहिए, नहीं तो आप बाहर से बालक का मुंह धो देंगी, लेकिन अन्दर बहुत मैल बना रहेगा। इसलिए आप बालक के हर एक अवयव को, उसके शरीर

के हर अंग को अच्छी तरह साफ करना सीख लीजिए। इससे बालक का स्वास्थ्य बहुत सुधर जाएगा। इस तरह बालकों को साफ-सुथरा रहने की आदत वाला बनाना बहुत ज़रूरी है। आप अपने घर में एक आईना रखकर बालकों को उनकी आँखों में, और कान, नाक, दाँत आदि में जो गन्दगी हो, उसको दिखाती रहेंगी, तो जब-जब और जहाँ-जहाँ भी उनको गन्दगी दिखाई देगी, तब-तब और वहाँ-वहाँ से वे उनको तुरन्त ही दूर करने और साफ रहने की आदत वाले बन जाएँगे। अपने बाल मन्दिर में हम आईना, कंघी, कंघा, पानी की कोठी और तौलिए इस तरह रखते हैं कि बालक खुद ही इन सबका उपयोग करते रहते हैं। वे खुशी-खुशी इन सब चीजों का उपयोग करके स्वयं साफ सुथरे रहने लगते हैं। यदि कभी आप बाल मन्दिर देखने आई होंगी, तो आपने यह सारी व्यवस्था यहाँ अपनी आँखों देखी ही होगी।

लेकिन शायद हमने तो यह मान ही लिया है कि बालक तो यों ही पलते-पुसते रहते हैं। उनके कपड़े तो गन्दे और मैले ही हो सकते हैं। उनकी गुदड़ी बदबूदार और पेशाब वाली ही हो सकती है। उनको अपने दाँत माँजने की ज़रूरत ही क्या है? और भला, वे नहाना-धोना क्या समझें? उनके बालों में कघी करना, उनको नहलाना, उनके कपाल पर कुंकुम् का तिलक लगाना, ये सारे काम तो हम हफ़्ते दो हफ़्ते में अपनी फुरसत से, मुहूर्त देख-कर, कर लिया करते हैं। यदि सचमुच ऐसा ही होता हो, तो यह सब तो एक बड़ा गुनाह ही होता है। हम हर रोज़ अपने घर के बरतन माँजते हैं, अपने पनियारे के बरतनों की सफाई करते हैं, अपने घर को रोज़ झाड़ते-बुहारते हैं, घर की चीज़ों पर, मेज-कुर्सी पर जमी धूल को पोंछ कर साफ करते रहते हैं, और अपने मटकों को भी रोज़ अन्दर-बाहर से धोते हैं। ऐसे सारे काम हम रोज़-रोज़ करते ही हैं, पर घरों में हमारे बालक तो गन्दे ही भटकते रहते हैं। उनकी चिन्ता ही क्या करनी थी? आप अपने घर के सारे साज-समान को तो साफ रखें, और अपने बालक को मैला-कुचैला और गन्दा बना रहने दें, तो क्या इसका कोई खटका कभी आपके मन में रहता ही नहीं? जब अपने घर की बेजान चीज़ों को आप साफ-सुथरा रखती हैं, तो क्या उस समय आपको इस बात का ध्यान रहता है कि आपके घर की एक जीती-जागती वस्तु बराबर

गन्दी और मैली बनी रहती है? इसमें हमारी क्या खूबी है कि घर के बच्चे तो गन्दे रहें, और घर का सारा साज-सामान सजा-धजा बना रहे? जो बालक हमारे बाल-मन्दिर में अपने बदन पर मैल की तहें लेकर आते हैं, जिनके नाखून बढ़े रहते हैं, जिनके सिर के बाल उलझे रहते हैं, जिनकी आँखों में कीच होती है, कानों में मैल और नाकों में रेंट रहती है, उनको देखकर हम उनके माँ-बापों के पोत-पानी को परख लेते हैं। कुछ बहनें खुद तो अपने घर से बन-ठन कर निकलती हैं, पर उनका पल्ला पकड़ कर उनके पीछे-पीछे चलने वाले उनके बालक तो मैले और गन्दे ही होते हैं। इन बहनों को देख कर लोग इन बहनों के बारे में क्या सोचते होंगे?

शायद आप यह मानकर अपने बच्चों को गन्दा रखती हैं कि बच्चे तो स्वभाव से आवारा होते ही हैं, वे धूल-मिट्टी के साथ खेलते ही रहते हैं, वे अपने हाथ-पैर और कपड़े गन्दे करते ही रहते हैं। लेकिन अगर आप एक बार उनको साफ-सुथरा रहना सिखा देंगी, उनमें साफ-सुथरेपन की आदत पैदा कर देंगी, तो आपको पता चल जाएगा कि बालक तो हमेशा साफ-सुथरे ही रहना चाहते हैं। आप नीचे लिखी कुछ बातों का ध्यान खास तौर पर रखिए। आप खुद इनकी ज़रूरत को समझिए। उदाहरण के लिए, बालक जब भी खाने बैठें, तो आप देखिए कि उसके हाथ अच्छी तरह धुले हुए हैं या नहीं। हाथों का उपयोग तो हर चीज़ को उठाने के लिए होता ही रहता है, और जब हाथ अलग-अलग चीज़ों को छूता है, तो उस पर मैल का ज़हर चढ़ जाता है। अगर बालक ऐसे ही गन्दे हाथों से भोजन करने की आदत वाला बन जाता है, तो लम्बे समय के बाद उसके खून में खराबी पैदा होने लगती है। इसलिए बालक को भोजन के लिए तभी बैठने दिया जाए, जब वे अपने हाथ अच्छी तरह धोकर भोजन करने आएँ।

• बालकों के कानों की जाँच आप हमेशा करती रहिए, उनके कान साफ रखिए, और दो-चार दिनों के अन्तर से उनके कानों में तेल की बूँदें डालती रहिए। आप या तो अपने बच्चों के सिर के बाल बढ़ने मत दीजिए और अगर बढ़ने देती हैं, तो हर हफ़्ते उनको अच्छी तरह धोकर बालों

में पड़ी रूसी को और दूसरी गन्दगी को बराबर साफ करती रहिए। बालकों की आँखों की भी जाँच बराबर कीजिए, और इस बात का ख़याल रखिए कि उनकी पलकों पर कीच न रहे। छोटी उमरवाली लड़कियों की नाक मत बिंधवाइए। नाक बिंधवाने के बाद नाक में बाली पहनाने से नाक की सफाई अच्छी तरह नहीं हो पाती। इसलिए अगर नाक बिंधवा दी है, तो उसमें सिर्फ सींक डालिए, पर बाली कभी मत पहनाइए। बाली के कारण कई लड़कियाँ बहुत दुःख पाती हैं। वे बहुत हैरान भी होती हैं। उनकी नाक में मैल भर जाता है, और कोशिश करने पर भी वह निकलता नहीं है। मैंने यह सब अपनी आँखों देखा है।

बालकों के नाखूनों में भी मैल और मिट्टी भरी रहती है। इसलिए हर हफ़्ते उनके बढ़े हुए नाखून ज़रूर कटवाइए। नहीं तो भोजन करते समय दाल और दूध-जैसे तरल पदार्थों के साथ नाखूनों में भरा मैल भी उनके पेट में पहुँचता रहेगा। अगर नाख़ूनों से निकाले गए ऐसे मैल की डली आपकी थाली में परोस दी जाए, तो क्या आप उसको खाना पसन्द करेंगी? मुझको विश्वास है कि आप अपने बालकों को भी मैल की ऐसी डली हरगिज़ नहीं खाने देंगी। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि आप अपने बालकों के बढ़े हुए नाख़ूनों को बिना चूके, बार-बार काटती रहेंगी।

बालक को मारिए-पीटिए मत

मुझको आप से एक महत्व की बात कहनी है। बात यह है कि आप अपने बालक को कभी भी मारिए-पीटिए मत। आप सोचेंगी कि बिना मारे-पीटे काम कैसे चलेगा? जो बालक बार-बार सिर पचाते रहें, हैरान और परेशान करते रहें ऊधम मचाते रहें, उनको मारे-पीटे बिना कैसे रहा जाए? लेकिन मैं आपसे कहता हूँ कि एक बार आप हमारे बालमन्दिर में आकर देखिए। वहाँ हम बालकों को कभी मारते-पीटते नहीं हैं। बाल-मन्दिर में कोई पचास बालक और बालिकाएँ हैं। ये सब बालक हमारा कहा मानते हैं। ये बालक हमको कभी भूलते ही नहीं हैं। अपने घर जाने पर भी इनको वहाँ हमारे ही सपने आते हैं। इसके लिए हमारे पास कोई जादू नहीं है। कोई जन्तर-मन्तर नहीं है। कोई इलम-बिलम भी नहीं है। कारण इसका एक ही है और वह यह है कि हम इनको कभी मारते-पीटते ही नहीं हैं।

बालक तो भगवान के घर से आए हुए हमारे छोटे-छोटे देव हैं। आप जानती हैं कि बालक को पाने के लिए हम हर पत्थर को भगवान मानकर उसकी पूजा करते हैं। बालक तो हमारे घरों के आभूषण हैं। बालक धन-दौलत के अनमोल खजाने हैं। बालक देश के जवाहर हैं। क्या आप अपने ऐसे महँगे और मूल्यवान बालकों को मारना-पीटना पसन्द करेंगी? प्रभु द्वारा प्रेमपूर्वक दिए गए अपने बालकों को मारते-पीटते समय आपके मन में यह डर बराबर बना रहना चाहिए कि कहीं अपनी इस मार-पीट के कारण आप अपने बालक को खो न बैठें। पहले तो बालक को पाने लिए आप बड़ी-बड़ी मनौतियाँ मानती हैं, लेकिन जब भगवान का भेजा बालक आपकी गोद में आ जाता है, तब आप अपनी पिछली सब बातें तो भूल जाती हैं, पर अपने बालक को मारना-पीटना कभी भूलती ही नहीं हैं।

मैं मानता हूँ कि बालक को मारने-पीटने की कोई उमंग आपके मन में उठती नहीं है। किसी भी शास्त्र में, कहीं भी, यह लिखा नहीं है कि बालक को मारने-पीटने से पुण्य प्राप्त होता है, और ऐसे पुण्य की प्राप्ति के लिए ही आप अपने बालक को मारती-पीटती रहती हैं। असल में होता यह है कि अक्सर अपने बालक की शरारतों से आप उकता उठती हैं, और तभी ताव में आकर आप अपने बालक को मार-पीट देती हैं। कुछ बहनें दूसरों पर आई रीस के कारण अपने बालकों को मारा-पीटा करती हैं। इस तरह वे अपनी रीस उतारती रहती हैं। जब कुछ बहनें आलस्य के कारण अपने शरीर से काम नहीं ले पाती तो अपनी इस लाचारी की झल्लाहट में वे अपने बालक को मार-पीट देती हैं। कुछ बहनें हैं, जो अपनी तुनुक-मिजाजी की वजह से अपने बालक को मारा-पीटा करती हैं। कुछ अपनी मौज-शौक के लिए, और अपनी कमज़ोरियों के कारण भी अपने बालकों को मारती-पीटती रहती हैं। बालक बार-बार कुछ-न-कुछ माँग कर अपनी माँ को परेशान करते रहते हैं। अपने आलस्य के कारण माँ बालकों द्वारा माँगी गई चीजें उनको तुरन्त दे नहीं पाती। बालक भोजन करना चाहता है, खेलना चाहता है, पानी पीना

चाहता है। ऐसी और भी कई चीज़ें वह अपनी माँ से बार-बार माँगता रहता है। माँ को यह सब अच्छा नहीं लगता। मजबूर होकर माँ को बालक द्वारा माँगी गई चीज़ें उसे देनी पड़ती हैं। ऐसी हालत में भी ताव में आकर माँ अपने बालक को मार-पीट देती है।

लेकिन बालक को इस तरह मारने-पीटने वाले सभी लोग बहुत बड़ी ग़लती करते हैं। अक्सर बालक को हठीला मानकर, जब वह पढ़ने नहीं जाता, या जब वह कोई चीज़ बार-बार माँगता रहता है, तो ग़ुस्से में आकर हम उसको मार बैठते हैं। किन्तु हम यह नहीं समझते कि बालक भी अपनी मरजी से, अपनी रुचि का कोई काम करना चाहता है। उसका अपना भी एक जीव है, उसकी अपनी भी कुछ इच्छाएँ होती हैं। ऐसा बालक मारने-पीटने से कभी सुधरता नहीं। अपने बाल-मन्दिर में आने वाले कुछ बालकों से जब हम पूछते हैं: 'क्या आपकी माँ आपको मारती हैं?' तो जिन बालकों की माताएँ उनको मारती-पीटती रहती हैं, वे हमारा सवाल सुनकर सहसा सहम जाते हैं। उनमें से कुछ बालक हमसे कहते हैं; 'आप यह बात हमारी माँ से मत कहिए, नहीं तो वे हमको और अधिक मारेंगी!' सयाने होने पर ऐसे बालक, अपनी शादी के बाद, जब अपने माँ-बाप से अलग रहने लगते हैं, तो उनके मन में अपने माता-पिता के प्रति कोई लगाव रहता ही नहीं। रहे भी कैसे? यह स्थिति आज हमारे कई परिवारों पाई जाती है, और इसका यही एक कारण होता है। इसलिए कोई भी कारण क्यों न हो, और अपने बालक का कैसा भी कोई कसूर आपके सामने आए, लाखों रुपयों का नुकसान ही क्यों न हो जाए, फिर भी अपने बालक को आप कभी मारिए-पीटिए मत।

मारने का काम तो कसाई का है, हत्यारे का है। मारने से तो परमेश्वर हमारे ही हाथ-पैर काट डालेगा। बालक तो ग़रीब और दुर्बल होता है। उसकी अपनी कोई ताक़त नहीं होती। उसमें बुद्धि और समझ भी नहीं होती। आप उसको मारेंगी, तो आपकी मार सहन करके भी सिसकियाँ लेता हुआ आखिर वह आप ही की गोद में आकर बैठेगा। वह बेचारा और कहीं जाएगा भी कहाँ? मैं जानता हूँ कि अपने बालक को इस तरह मारने-पीटने के बाद आप ख़ुद भी फिर पछताने लगती हैं। बालक को तो आप ही ने अपने भगवान से माँगा है न? बालक तो आपका ही माँगा हुआ वैभव है। भगवान के घर से वह आपको मिला है। इसलिए किसी भी हालत में उसको मारना-पीटना ज़रूरी नहीं है। मारने-पीटने से बालक सुधरने के बदले बिगड़ता ही अधिक है। जिन बालकों को मार खाते रहने की आदत पड़ जाती है, वे बहुत ही दीन बन जाते हैं। वे बात-बात पर रोने-चिल्लाने लगते हैं। वे बेचारे बनकर रह जाते हैं। वे हिम्मत खो बैठते हैं, और अपनी मारती माँ की याद आते ही वे इतने डर जाते हैं, मानो किसी राक्षस की याद से काँप उठे हों!

हम अपने बड़ों और बूढ़ों के मुँह से बार-बार सुनते हैं, और पुस्तकों में भी फिर-फिर पढ़ते हैं कि माँ के प्रेम के समान दूसरा कोई प्रेम है ही नहीं। ऐसी स्थिति में जब हम यह देखते हैं कि आप अपने बालक को मारती-पीटती रहती हैं, तो सोचिए कि हमारे मन में आपके प्रति गौरव की कोई भावना कैसे जाग सकती है?

दुनिया जानती है कि कमज़ोर आदमी अपनी औरत के सामने शेर बन जाता है। जो जितना कमज़ोर, वह उतना ही ज़्यादा ग़ुस्सेबाज़! इसी तरह आपके अन्दर भी ग़ुस्सा भरा रहता है। यह ग़ुस्सा आपकी अपनी कमज़ोरी है। प्रसंगवश घर में कोई चिमनी फूट जाए, चूल्हे पर चढ़ाई हुई खिचड़ी जल जाए, या घर की कोई चीज़ खो जाए, और वह झटपट न मिलें, ऐसी स्थिति में अगर अपना बालक आपके सामने पड़ जाए, तो फ़ौरन ही आपके हाथों उसकी पिटाई हो ही जाए! लेकिन मुझको आपसे यह कहना है कि अपनी इस कमज़ोरी और लापरवाही के लिए आप अपने बालक को नाहक ही मारती और पीटती हैं। अगर आप अपने बालक को इस तरह बार-बार मारती-पीटती रहेंगी, तो सयाना होने पर और ख़ुद माँ या बाप बनने पर आपका यह बच्चा भी अपने बच्चों को मारा-पीटा करेगा। इस तरह हमारी इस दुनिया में बालकों को मारते-पीटते रहने की यह खोटी परम्परा बराबर चलती रहेगी, और इसका सारा पाप आपको लगता रहेगा। बालक को एक बार भी मारने-पीटने से आपकी पाँच-पच्चीस एकादशियों के उपवासों का सारा पुण्य समाप्त हो जाएगा!

मार-पीट के कारण हिंसा होती है। पिटने पर बालक सिसकियाँ ले-लेकर रोता है, और बालक की इन सिसकियों में सारे घर को जला डालने की ताक़त रहती है। इसलिए बालक की अन्तरात्मा को कभी दुःख नहीं पहुँचाना चाहिए। बालकों के निःश्वास बहुत ही भयंकर होते हैं। मुझको एक शास्त्र का पता चला है। उस शास्त्र में कहा गया है कि जिनको पुत्र पाने की इच्छा हो, उनको चाहिए कि वे अपने बच्चों को कभी मारें-पीटें नहीं। जो बहनें अपने लिए अखण्ड सुख और सौभाग्य चाहती हैं, उन्हें भी अपने बच्चों को कभी मारना-पीटना नहीं चाहिए। आप यह तो जानती ही हैं कि दान करने से, तप करने से, उपवास करने से, व्रत रखने से और तीर्थों की यात्रा करने से मनुष्य को पुण्य प्राप्त होता है। इसी तरह जब कभी ग़ुस्से के कारण अपने बच्चों को मारने-पीटने की आपकी इच्छा प्रबल हो उठे, तो उसको रोकने के लिए आप तप कीजिए। आपके इस तप की बड़ी महिमा है। अपने ग़ुस्से को रोकने के लिए किए गए आपके इस तप के पुण्यमय प्रभाव से आपको अपने पुत्र-पुत्री का और अपने पति का अखण्ड सुख, सौभाग्य और धन-वैभव सब कुछ सहज ही प्राप्त हो सकता है। इसलिए हमको चाहिए कि अपने घरों में आए हुए अपने इन नन्हें देवों का दिल हम कभी भी न दुखाएँ।

आप मुझसे पूछेंगी कि मेरे अपने भी तो बच्चे हैं न? उनके साथ मेरे घर में कैसा व्यवहार होता है? इसके जवाब में मुझको यह कहना है कि मेरे परिवार में मार-पीट बिलकुल ही बन्द हो चुकी है। मैं ख़ुद तो अपने बच्चों को कभी मारता और पीटता हूँ ही नहीं, पर अपने परिवार में भी मैंने सबको ख़बरदार कर दिया है कि वे घर के बच्चों को किसी भी हालत में कभी मारें-पीटें नहीं। और, मेरे परिवार के सब लोग इस पर ठीक अमल कर रहे हैं। एक समय था, जब मुझको भी ग़ुस्सा आया करता था। मै भी अपने बच्चों पर हाथ चला दिया करता था। लेकिन इस सबको रोकने के लिए मुझको बड़ी कठिन तपस्या करनी पड़ी है। आज से आप भी यह व्रत लीजिए कि जब कभी आपको ग़ुस्सा आ जाए, और बालक पर मार पड़ जाए, तो आप उपवास करेंगी। ऐसा करते रहने से ग़ुस्सा होने की और बालक को मारने-पीटने की आपकी आदत धीरे-धीरे छूट जाएगी। बाद में तो अपने बच्चों को मारने-पीटने की आपकी मरजी ही मर जाएगी!

•

धनवानों से

यह लेख मैं विशेष रूप से धनवानों के लिए लिख रहा हूँ। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि मध्यम श्रेणी के अथवा ग़रीब श्रेणी के लोग इसका लाभ ले ही नहीं सकते। यह लेख धनवानों को ध्यान में रखकर इसलिए लिखा गया है कि इसमें दिए गए अधिकतर सुझावों को धनवान ही अमल में ला सकते हैं।

आज हमारे देश में परिस्थिति कुछ ऐसी बन चुकी है कि धनवान लोग अपने छोटे बालकों को आया, नौकर, 'कम्पैनियन' या शिक्षक की देखरेख में रखकर यह मान लेते हैं कि उन्होंने अपने कर्तव्य का पालन कर लिया है। आया और नौकर आदि लोग यह समझते हैं कि उनके मालिक ने अपने जिन बालकों को उनके हवाले किया है, उन बालकों को वे मालिक के बढ़िया बँगले की आलमारियों पर रखे गए ख़ूबसूरत और कीमती खिलौने दिखाते रहें, जैसे भी बने, मालिक के बालकों को ख़ुश रखें; बालकों को अपनी मानी हुई रीति-नीति के हिसाब से भलीभाँति तैयार करें, और मालिक के सामने उनके बालकों को बढ़िया पुतलों की तरह पेश करते रहें। यही उनके कर्तव्य की मर्यादा है।

चूँकि माता-पिता अपने काम-धन्धों में या ऐश-आराम में डूबे रहते हैं, इसलिए वे शायद ही कभी यह सोचते हैं कि आया अथवा नौकर के हाथों उनके बालकों की क्या गत बनती है। और, चूँकि आया आदि को बालक की शिक्षा-दीक्षा का कोई ख़याल होता ही नहीं, इसलिए उनके मन में बालक के बारे में कोई ऊंचे विचार कभी उठते ही नहीं।

अधिकतर माता-पिता और नौकर -चाकर, दोनों, एक ही बात समझते हैं कि बालक ज़िन्दा बने रहें, तो वे भर पाएँ। और, सौभाग्यवश जब तक वे जीएँ तब तक स्वस्थ बने रहें, तो और भी अच्छा, और, इससे अच्छी तो कोई बात है ही नहीं कि बिना कोई परेशानी खड़ी किए बालक बढ़िया कपड़ों और गहनों से सज-धजकर घर में पुतलों की तरह चलते-फिरते नज़र आते रहें।

आमतौर पर आज स्थिति यह बनी है कि धनवान लोगों के बालक घर के नौकर-चाकरों पर अपना गुस्सा उतारने वाले, अपने दुर्गुणों का प्रदर्शन करने वाले, और माँ-बाप को जब भी थोड़ी फ़ुरसत रहे, उस समय कुछ देर के लिए उनका मनोरंजन करने वाले खिलौने-भर बनकर रह गए हैं। घर में भी ऐसा कोई आदमी शायद ही रहता है कि जिसे बालक के स्वभाव की और उसकी सार-सँभाल की उतनी जानकारी भी हो, जितनी मालिक के घोड़े के सईस को घोड़े के स्वभाव की और सार सँभाल की होती है। मालिक के तोते की देख-भाल करने वाले नौकर को जितना ज्ञान तोते के स्वभाव का और उसके खान-पान का होता है, और मालिक के बगीचे के माली को बगीचे में लगे पेड़-पौधों की परवरिश और रखवाली के नियमों का जितना ज्ञान होता है, उतना ज्ञान परिवार में बालक-रूपी पौधे की परवरिश का भी किसी को होता हो! मालिक जब अपनी दुकान पर किसी को नौकर रखते हैं, तो वे इस बात पर ध्यान देते ही हैं कि नौकर में नौकरी की आवश्यक योग्यता है या नहीं। इसी तरह रसोइए को काम देते समय मालकिन भी इस बात का खयाल रखती है कि वह रसोई बनाना जानता है या नहीं। लेकिन घर में बालक के लिए आया अथवा नौकर रखते समय तो सिर्फ़ इसी बात का ध्यान रखा जाता है कि वह बालक के कपड़ों और गहनों के लोभ से बालक को कोई हानि न पहुँचाए। और ज्यादा-से-ज्यादा यह कि वह बालक को अकेला छोड़कर कहीं इधर-उधर घूमने-भटकने न निकल जाए! निःसन्देह आया में अथवा नौकर में एक गुण तो होना ही चाहिए, अगर यह गुण उसमें नहीं, तो उसको कोई नौकर ही न रखे, और वह गुण यह है कि नौकर के पास एक ऐसी कला होनी चाहिए कि वह उसको सौंपे गए बालक को एक बढ़िया गुलाम बना सके। जो दूसरों के सहारे जीने वाला बन जाता है, वह गुलाम ही न होता है? अपंग वह है, जो

अपना काम अपने हाथों करने की अपनी शक्ति को खो बैठा है। धनवानों के बालकों के जीवन का आधार वे नौकर ही होते हैं, जो 'हाँ, भैया जी' और 'हाँ, लल्ला जी' कह-कहकर उनको खुश रखा करते हैं। जिस हद तक नौकर बालक की 'हाँ' में 'हाँ' मिलता रहता है, उस हद तक बालक नौकर का ग़ुलाम बनता जाता है। बालक पराधीन बन जाता है। अगर बालक को कहीं घूमने जाना है, तो वह नौकर के बिना जा ही नहीं सकता। नौकर की मदद के बिना बालक पानी भी नहीं पी सकता। अगर नौकर हाज़िर न हो, तो बालक न पानी पी सकता है, और न घूमने ही जा सकता है। उसे मन मसोसकर रह जाना पड़ता है। यह उसकी पूरी पराधीनता है। यही उसकी ग़ुलामी है। जिस हद तक एक आदमी दूसरे आदमी के लिए काम करता रहता है, उस हद तक वह काम करने वाले आदमी का ग़ुलाम बनता रहता है। एक राजा में, जो राजापने की अपनी ठसक या शान बनाए रखने के लिए अपने हाथों अपने मोजे नहीं उतारता और एक अपंग में, जिसमें अपने मोजे ख़ुद उतार लेने की शक्ति ही नहीं रह गई है, दोनों में, कोई फ़र्क़ नहीं है। एक मन से पराधीन बन चुका है, दूसरा शरीर से पराधीन है। एक मन से अपंग है, दूसरा हाथ से अपंग है। इसी तरह जिन बालकों के सारे काम नौकर-चाकर ही करते रहते हैं, वे बालक मन से और शरीर से पराधीन होते हैं, अपंग और ग़ुलाम होते हैं।

आयाओं और नौकरों की पराधीनता से कुछ-कुछ मुक्त होने के बाद जो बालक पढ़ने की उमर वाले माने जाते हैं, उन पर एक दूसरी राजसत्ता शुरू हो जाती है। बालकों को पूरी तरह गुलाम बनाने के ये नए तरीक़े आयाओं और नौकरों के तरीक़ों के साथ खूब ताल-मेल रखते हैं। इन तरीक़ों में एक तरीक़ा घर में शिक्षक रखने का है, जो बालकों को पढ़ाने का काम करता है। आज-कल शिक्षक रखने की एक फ़ैशन चल पड़ी है, और उसे एक प्रकार की प्रतिष्ठा भी मिल चुकी है। लेकिन क्या कभी किसी ने सोचा है कि बालक के लिए शिक्षक क्यों रखा जाए? माँ-बाप इसलिए खुश रहते हैं कि वे बालक के लिए शिक्षक रख सकते हैं, और उनको इस बात का सन्तोष बना रहता है कि बालक शिक्षक से धीरे-धीरे कुछ सीखता जाता है। दुकान पर मुनीम रखने में, घर में रसोइया रखने में, और बाग-बगीचे के लिए माली रखने में इन

सबकी योग्यता का कुछ विचार करना ही पड़ता है। किन्तु शिक्षक रखने में विचार करने की क्या आवश्यकता है? शिक्षक का मतलब है, पढ़ाने वाला और खुद कुछ पढ़ा हुआ। इसके अलावा अगर वह किसी विद्यालय में शिक्षक का काम करता है, तो और भी अच्छा है। शिक्षक की योग्यता इसी में है कि वह शिक्षक कहलाता है, बालक को अपने पास बुलाता-बैठाता है, और खुद जिस तरह पढ़ा होता है, उसी तरह वह बालक को भी पढ़ाता रहता है। इससे अधिक योग्यता की अपेक्षा उससे रखता ही कौन है? वह बालक को क्या सिखा रहा और क्या नहीं सिखा रहा, इसकी जानकारी उससे लेता ही कौन है? सब कोई यही मानते है कि अगर बालक ने बारहखड़ी और गिनती सीख ली है, तो वह काफ़ी है। लेकिन कोई इस बात का विचार नहीं करता कि बालक के विकास पर पानी फिर चुका है, बालक में विकसित होने की जो शक्ति और उत्साह था, वह दब चुका है, बालक का व्यक्तित्व मर चुका है, और वह एक यन्त्र-सा बन गया है। आज यह दशा हमारे बालकों की है, उनको इस दशा में से छुड़ाने के लिए माँ-बापों को क्या करना चाहिए, यहाँ मैं उसी की थोड़ी चर्चा करूँगा। मेरे ये विचार कोरे पुस्तकीय विचार नहीं हैं, बल्कि ये मेरे अनुभवों में से जन्मे हैं, इस बात को मैं शुरू में ही स्पष्ट कर देना चाहता हूँ। ये विचार सुझाव के रूप में हैं, और तीन से छह-सात साल की उमर के उन बालकों के लिए हैं, जो पाठशाला में न जाकर घर में ही रहते हैं।

: १ :

मेरा पहला सुझाव यह है कि बालकों को नौकरों की गुलामी से मुक्त किया जाए। मतलब यह कि बालकों के लिए नौकर रखे ही न जाएँ। किन्तु आवश्यकता पड़ने पर बालकों के विकास में उनकी मदद करने के लिए नौकर रखे भी जा सकते हैं, चूँकि माँ-बाप खुद सारे दिन बालकों की सार-सँभाल नहीं कर पाते हैं, इसलिए नौकर भले ही रखे जाएँ। लेकिन नौकरों को यह ठीक-ठीक समझा देना चाहिए कि उनको क्या करना है, और क्या नहीं करना है। यह जरूरी नहीं है कि नौकर कोई विद्वान या सुयोग्य व्यक्ति ही हो, किन्तु

उसके ध्यान में यह बात अच्छी तरह बैठ जानी चाहिए कि अमुक काम तो उसे करने ही नहीं हैं। जो काम नौकरों द्वारा नहीं किए जा सकते अथवा जो नौकरों को करने ही नहीं हैं; उनको नीचे लिखे अनुसार गिनाया जा सकता है।

1. नौकर बालक को मारे-पीटे नहीं।
2. नौकर बालक को डराए-धमकाए नहीं।
3. बालक की हाज़िरी में नौकर कोई गन्दी बात न कहे, कोई गाली न बके।
4. नौकर बालक को अपमानजनक शब्दों के साथ न बुलाए।
5. नौकर बालक की झूठी और बेमतलब खुशामद न करे।
6. जो काम बालक खुद करना चाहता है, उसमें नौकर उसकी मदद न करे, और बालक के काम में खुद कोई रुकावट न डाले।
7. बालक को अपनी आँखों के सामने खेलने के लिए खुला छोड़ देने के बाद, बालक जो भी खेले, उसमें नौकर कोई बाधा खड़ी न करे।
8. जल्दी के कारण, या बालक ठीक से काम करना जानता नहीं है, इस कारण, अथवा टूट-फूट के डर से, या बालक के कपड़ों और उसके शरीर को गन्दा होने से बचाने के विचार से, बालक जो भी काम कर रहा हो उसको बालक के बदले नौकर कभी न करे।
9. यह न मान लिया जाए कि धनवानों के बच्चे तो इसी तरह खेलते हैं। वे प्राय: खिलौनों से ही खेला करते हैं, गारे-मिट्टी से नहीं। खेलते समय बालक कोई ग़लत काम न करते हों, अथवा ऐसा कोई खेल न खेलते हों, जिससे उनके शरीर को भारी नुकसान पहुँचता हो, तो उनको उनके मनपसन्द खेल खेलने से रोका न जाए। नौकर इसका पूरा खयाल रखें।

: २ :

मेरा दूसरा सुझाव यह है कि बालकों को हर किसी शिक्षक के हाथ में न सौंपा जाए। असल में, छोटे बच्चों को ट्यूशन की कोई आवश्यकता नहीं होती, फिर भी ट्यूशन लगाने की इच्छा रोकी ही न जा सके, तो किसी ऐसे शिक्षक को रखा जाए, जो शिक्षा के विषय में कुछ जानता-समझता हो। ऐसे शिक्षक में नीचे लिखे गुण होने ही चाहिए।

1. जो गुण नौकर के लिए आवश्यक हैं, वे सब गुण।
2. बालक को जो भी सिखाना हो, सो ज़बरदस्ती नहीं, बल्कि राज़ी-मरज़ी से सिखाने की वृत्ति।
3. शिक्षक स्वभाव से धीर-गम्भीर हो, ख़ुशामदी नहीं।
4. शिक्षक के सामने सदा यह विचार रहे कि उसका काम मालिक को ख़ुश रखने का नहीं है। उसे बालक को ख़ुश रखना है। बालक के विकास के लिए उसको शिक्षक का काम सौंपा गया है।
5. यदि शिक्षक यह अनुभव करे कि उससे बालक को कोई लाभ नहीं हो रहा है, तो वह नौकरी छोड़ देने के लिए तत्पर रहे।

आम तौर पर कोई बिरला ही शिक्षक ऐसे गुणों वाला मिलता है। इसलिए उचित तो यही है कि बालकों को शिक्षक के बिना ही सीखने दिया जाए। कोई चिन्ता की बात नहीं, अगर ऐसा करने से बालक कुछ कम सीखें। क्योंकि इससे उनके विकास का, उनकी आत्मा का नाश तो होगा ही नहीं।

: ३ :

छोटे बालक ख़ुद ही अपनी उमर के हिसाब से ज्ञान प्राप्त कर सकें, इसके लिए कुछ सुन्दर और व्यावहारिक योजनाएँ हैं। यदि इन योजनाओं पर सावधानी के साथ अमल किया जाए, तो शिक्षक अथवा नौकर की मदद के बिना भी बालक बहुत-कुछ सीख सकता है। वह इतना होशियार बन सकता है कि उसको देखकर हम अचम्भे में डूब जाएँ।

इन योजनाओं में से एक योजना मैं यहाँ दे रहा हूँ। यदि इस योजना पर अमल किया जाए, तो इससे बालक आनन्दी, स्वस्थ और स्वतंत्र बन सकता है। वह माता-पिता की और नौकर-चाकर की पराधीनता से छुट्टी पा सकता है। बालक स्वयं ही अपनी इन्द्रियों का विकास करके अपने मन और अपनी आत्मा का विकास नाना प्रकार से कर सकता है। इस योजना का ब्यौरा यों है :

बालक का अपना कमरा

धनवानों के बँगलों में भी बालकों के लिए कोई अलग कमरा रखा नहीं जाता। पूरा बँगला और उसमें सजाया गया सारा फरनीचर कुछ ऐसे ढंग का होता है कि उसमें बालकों के काम की कोई भी चीज़ नहीं होती। घर की सारी चीज़ें बड़ी उमर के लोगों के लिए ही होती हैं। बालकों के लिए सिर्फ कुछ अच्छे-अच्छे खिलौने होते हैं। ये खिलौने भी ज्यादातर या तो आलमारी के अन्दर या आलमारी के ऊपर ही रखे रहते हैं। अगर कभी ये बालकों के लिए नीचे रखे भी जाते हैं, तो इनका उपयोग इतनी ख़बरदारी के साथ करना होता है कि बालक इन से कुछ सीख ही नहीं पाते। बालक इन खिलौनों को बहुत ही कम पसन्द करते हैं क्योंकि इनसे उनको किसी तरह का कोई आनन्द प्राप्त नहीं हो पाता। बालक कुछ ही देर में इनसे उकता जाते हैं और इन्हें उठाकर फेंक देते हैं, अथवा यह जानने के लिए कि इनके अन्दर क्या है, वे इनको तोड़-फोड़ डालते हैं। आज बँगलों में रहने वाले बालकों की यही स्थिति है। इसलिए पहली ज़रूरत तो यह है कि बालकों को एकान्त अलग कमरा मिलना चाहिए। इस कमरे में सारी चीज़ें बालक की उमर के हिसाब से, उसकी ज़रूरतों को ध्यान में रखकर, जुटाई जानी चाहिए। इस कमरे का वर्णन कुछ इस तरह किया जा सकता है:—

1. कमरा न बहुत बड़ा हो, और न बहुत छोटा हो।
2. कमरे की दीवारें नीले अथवा हलके हरे रंग से रँगी हों।
3. बालक खड़े-खड़े हाथ लगा सकें, इतनी ऊँचाई पर कमरे में बड़े आकार के कुछ चित्र लगे हों।
4. फर्श पर नीले और लाल रंग की पट्टियों वाली दरियाँ बिछी हों।
5. कमरे में एक-एक दराज वाली हल्की, छोटी मेजें हों, जिनको बालक ख़ुद उठा सकें और इधर-उधर ले जा सकें। मेजों का ऊपरी हिस्सा समतल हो।
6. जब जी चाहे तब बालक आराम कर सके, ऐसी छोटी खटिया या छोटा पलंग हो, और उस पर साफ़-सुथरा बिछौना बिछा हो।
7. एक कोने में हाथ-मुँह धोने के लिए पानी की छोटी टंकी हो। पास ही हाथ-मुँह पोंछने के लिए एक छोटा तौलिया हो, और एक छोटे कंघे के साथ दीवार पर एक आईना भी टँगा हो।
8 खिड़कियों पर फूल-पौधों वाले छोटे-छोटे गमले रखे हों।

9. पानी का एक टब हो।
10. पेड़-पौधों को पानी सींचने के लिए एक छोटी भारी हो।
11. बालक के हाथ पहुँच सकें, इतनी ऊँचाई पर दीवारों में खूंटियाँ लगी हों।
12. पानी पीने के लिए एक छोटी मटकी या गगरी हो, और एक हलका-सा छोटा प्याला या गिलास हो।

बालक की पोशाक

1. जहाँ तक सम्भव हो, बालक के पहनने के कपड़े ढीले ढाले हों और सामने की तरफ बटन वाले हों।
2. पैरों में बूट और मोजे न हों।
3. सिर पर टोपी या ऐसी कोई चीज़ न हो।
4. पसन्द करने लायक पोशाक—घुटनों तक की चड्डी या पाजामा, कमीज़ या कुरता। बनियान नहीं। कमीज या कुरते की बाँहें कुहनी तक रहें।

कमरे में साधन-सामग्री

1. एक पट्टा और उस पर गीली मिट्टी का एक पिण्ड। पास ही में हाथ धोने के लिए एक डोल या बालटी और एक तौलिया। मिट्टी के खिलौने सुखाने के लिए एक पटिया।
2. छोटे-छोटे रूमाल। कुछ ब्रुश और एक छोटी पेटी कपड़ों की तहाकर रखने के लिए।
3. रबड की छोटी-बड़ी गेंद और लकड़ी के बल्ले।
4. लकड़ी के पहिए अथवा लोहे की पट्टी वाले पहिए और हुक।
5. अलग-अलग धातुओं के और अलग-अलग कीमतों वाले सिक्के।
6. ऊन, सूत और रेशम के नमूने, जो 'सैम्पल' के रूप में मिलते हैं। इनके टुकड़े, हर किस्म के दो-दो।
7. चौपड़ नहीं, केवल गोटे।
8. रंग बिरंगी चकरियाँ।

9. छोटे भाड़ू और छोटे सूप[1]।
10. लट्टू और डोरी।
11. दो-चार छोटी काली तख्तियाँ और खड़िया मिट्टी की पेटी।
12. चित्रों के अलबम—चित्र हमारे देश के जीवन का परिचय कराने वाले सुन्दर और साफ होने चाहिए।
13. स-र-ग-म के सुर निकालने वाले काँच के प्यालों के दो सैट।
14. लकड़ी के घन के 20 टुकड़े।
15. एक घड़ियाल और हथौड़ी।
16. मोन्तेस्सोरी पद्धति में काम आने वाली गट्टों की तीन पेटियाँ।
17. मोन्तेस्सोरी पद्धति में काम आने वाला मिनारा, चौड़ी सीढ़ी और और लम्बी सीढ़ी।
18. मोन्तेस्सोरी पद्धति में काम आने वाले रंगों की पेटी।

ये सारे साधन ऐसे हैं कि यदि बालक को इनके बीच खुला छोड़ दिया जाए, तो बालक खुद ही अपनी पसन्द का साधन लेकर उसके साथ खेलना शुरू करेगा, और इससे बालक अपना विकास खुद ही करता रहेगा। बहुत ही ज़रूरी हुआ, तो बालक को एकाध बार ही यह समझाना होगा कि इन सब साधनों का उपयोग क्या है, और उसको इनका उपयोग किस तरह करना है। बाद में तो बालक खुद ही सब कुछ कर लेगा। बालक को ये साधन सौंप देने से वह स्वतन्त्र बनेगा, आनन्दी बनेगा, स्वस्थ बनेगा और नौकर अथवा आया की ग़ुलामी से उसे छुटकारा मिल जाएगा। वह ज़िद करना और झगड़ना भूल जाएगा। साधन सब अच्छे होने चाहिए, ऐसे-वैसे नहीं। मोन्तेस्सोरी पद्धति के जो साधन व्यवस्थित रूप से बने हों, उन्हीं साधनों का उपयोग किया जाना चाहिए।

●

अपूर्ण बालक

साधारणतया किसी भी आदर्श कक्षा या शाला में, जहाँ समान धारणा वाले बालक काम करते हैं, वहाँ बालकों के बीच व्यवस्था का अथवा उनको नियंत्रण में रखने का सवाल ही खड़ा नहीं होता । जब बालकों के साथ शिक्षकों को पुलिस या न्यायाधीश की तरह पेश आना पड़ता है, तब यह समझ लेना चाहिए कि शिक्षक का, बालक का या परिस्थिति का कोई-न-कोई दोष अवश्य है । उत्पन्न होने वाली अनिष्ट परिस्थिति को दूर करने के लिए शिक्षक प्राय: तरह-तरह की युक्ति-प्रयुक्तियों से काम लेता है । इससे थोड़े समय तक तो काम ठीक ढंग से चलता दिखाई पड़ता है, लेकिन बाद में 'वही रफ़्तार बेढंगी, जो पहले थी, सो अब भी हैं' की स्थिति फिर बन जाती है । असल में तो शिक्षक को चाहिए कि वह परिस्थिति को दबाने, छिपाने या दूसरा रूप देने की अपेक्षा उसके कारणों की तह में जाए । जो शिक्षक ऐसा नहीं करता, वह अपने छात्रों को सामाजिक, नैतिक या दूसरे किसी भी प्रकार की ऊँची शिक्षा नहीं दे सकता । असाधारण या अपवाद-रूप बालक एक अजब पहेली है । उसकी शिक्षा का प्रश्न अधिक सूक्ष्मता से विचार करने योग्य है । शिक्षक को उसका अवलोकन शास्त्रीय दृष्टि से करना चाहिए । तटस्थ भाव से देखने-समझने के बाद जो कुछ भी करना उचित जान पड़े वह किया जाना चाहिए, यदि वह बालक के लिए हानिकारक न हो । बालक को गिनना या पढ़ना न आने पर जिस तरह शास्त्रीय दृष्टि वाला शिक्षक उसके कारण का पता लगाता है, उसी तरह उसको बालक के दूसरे मानसिक दोषों के कारण का भी पता लगाना चाहिए । शिक्षक को समझना चाहिए कि यदि बालक अपनी इच्छा से, अपने मन पर, समझ-बूझकर, अंकुश न रख सके, तो उसको पढ़ाने का कोई अर्थ नहीं रह जाता । शिक्षक हमेशा याद रखे कि बालक के बारे में कहे गए बेहूदा, आलसी, लापरवाह, ठग, निकम्मा आदि शब्दों का प्रभाव बालक पर अच्छे के बदले 'बुरा' ही अधिक पड़ता है । इसी के साथ, शिक्षक को यह भी याद रखना चाहिए कि 'यह न करो, वह न करो' आदि निषेध-सूचक बातें कहते रहने से भी कोई बात बनती नहीं है । बालकों की कमज़ोरियों के बारे में शिक्षक को कोई टीका या चर्चा भी नहीं करनी चाहिए । इसलिए नहीं कि इस तरह उनको डराना अनुचित है, बल्कि इसलिए कि इससे उनको सुधारने का काम और भी कठिन हो जाता है । शिक्षक को उपदेश का या नीति-बोध का काम कम-से-कम करना चाहिए । ऐसा करने से बालकों की नैतिक भावना और संस्कारिता उल्टी मन्द हो जाएगी, और वे बिना किसी कारण के ही अस्वस्थ और बेचैन रहने लगेंगे । बालक के वाचन या लेखन को सुधारने का काम शिक्षक जिस शास्त्रीय पद्धति से करता है, नैतिक सुधार के काम में भी उसको उसी पद्धति का उपयोग करना चाहिए ।

कभी-कभी विद्यालयों में और घरों में बालकों के कारण जो कठिनाइयाँ खड़ी होती हैं, उनके आचरण में हमको जो न चाहने योग्य व्यवहार दिखाई देता है, यदि हम उसके कारण को, परिस्थिति को और उसके सम्भाव्य उपायों को जान लें, तो शिक्षण और बाल-संगोपन के काम में हमारा मार्ग सरल बन जाए ।

बालकों से सम्बन्ध रखने वाली कठिनाइयों को दूर करने में सहायक बनने वाला एक नक्शा हम नीचे दे रहे हैं । इसके लिए हम श्री चार्लेटन वॉशबर्न के और श्री सम्पादक 'न्यूइरा' के आभारी हैं ।

इस नक्शे के पाँच हिस्से हैं । पहले हिस्से में बालक के माने जाने वाले दोष दिए गए हैं । दूसरे में इन दोषों के कारणों की चर्चा है । तीसरे में उन परिस्थितियों को गिनाया गया है, जिनके कारण ये दोष उत्पन्न होते हैं, और चौथे में इन दोषों को दूर करने के उपाय बताए गए हैं । आखिर के पाँचवें हिस्से में यह बताया गया है कि किन-किन कारणों से बालकों का आचरण अधिक खराब होने लगता है ।

इस नक्शे से हम को पता चलेगा कि आज इन दोषों को दूर करने के बदले अधिकतर हम ऐसे ही उपायों से काम लेते हैं, जिनसे दोष बढ़ते हैं या और गम्भीर बनते हैं । नक्शे का अन्तिम अंश इसका साक्षी है । —

अपूर्णताओं के प्रकार	सम्भावित कारण	कारणभूत परिस्थिति	उपचार	अशुद्ध उपचार
1. जरूरत से ज्यादा शोरगुल	क–अनुकरण या सूचन	शोरगुल वाली जगह जोर की आवाज़ जोशीला वातावरण	शान्ति धीमी आवाज़ स्वस्थता (POISE)	छड़ी पछाड़ना या घण्टी बजाना तानकर गुस्से से बोलना उलाहना देना ललचाना सबके सामने टीका करना 'शोर हो रहा हैं', कहना धमकाना, चुप !
	ख–स्नायुओं की थकावट	प्रतिकूल बैठक अपर्याप्त काम	अनुकूल बैठक पर्याप्त काम	
	ग–ज्ञान-तन्तुओं की थकावट	अपर्याप्त आराम अनुचित आहार थकाने वाला काम	शारीरिक आराम अच्छा आहार कार्यक्रम में हेरफेर	
	घ–ख़राब हवा	हवा की कम आमद-रफ़्त	अधिक ताज़ा हवा	एक ही प्रकार का काम देते रहना
	च–उद्दण्डता या हठीलापन	अपने बारे में ऊँचेपन का विचार	दूसरों की मदद करना	प्रकट में उलाहना देना
	छ–ध्यान खींचने की इच्छा	अनुचित महत्व देना	दूसरे का ख़याल कराना	दिल दुखाना पक्षपात करना
	ज–घबराहट	डरपोकपन	स्वस्थता	नाराज़ होना
	झ–अस्वस्थता	अव्यवस्थित कमरा या बैठकें	सुघड़ता	प्रकट में दिखाई पड़नेवाली निरर्थक चीज़ों का संग्रह
2. समय का दुरुपयोग या आवारापन	क–विकासक हेतु का अभाव	रास्ता नहीं सूझना	तरह-तरह के काम सुझाना	ज़बरदस्ती काम में लगाना
	ख–आगे बढ़ने की अनिच्छा	काम से असन्तोष	अच्छा काम और सहज प्रोत्साहन	टीका करना
		बहुत आसान काम	अधिक रुचिकर काम देना	एक ही काम बार-बार करवाना
	ग–जिम्मेदरी का अभाव	दूसरों ने फिकर रखी	जिम्मेदारी सौंपना	शिक्षक द्वारा खुद जिम्मेदारी उठा लेना
	घ–तुलना-शक्ति की कमी	दूसरों ने निर्णय कर दिया हो	तुलना और निर्णय करवाना	शिक्षक द्वारा निर्णय कर देना

1	2	3	4	5
	च—स्वरचित योजना का अभाव	दूसरों ने योजना बना दी हो	स्वयं योजना बनाना और रास्ता खोजना	शिक्षक द्वारा योजना बनाकर देना
	छ—क्रिया-शिक्ति की कमी	निर्णय दूसरों ने कर दिया हो क्रिया-शक्ति कमज़ोर हो	स्वयं निर्णय करना	शिक्षक द्वारा निर्णय
	ज—विरोधी आकर्षण	शाला का नापसन्द काम, नापसन्द मित्र बुरी आदतें	मन चाहा काम पसन्द करना माता-पिता को ध्यान देना चाहिए माँ-बापों और नौकरों को ध्यान देना चाहिए	ज़बरदस्ती काम करवाना धिक्कारना
	झ—ध्यान खींचने की इच्छा	दम्भी और स्वार्थी बनने की आदत	दूसरों का विचार करना सिखाना महत्व न देना	सबके सामने उलाहना देना दोष निकालना
	ट—ज्ञान-तन्तुओं की थकावट	अपर्याप्त पोषण अनियमित जीवन ज्ञान-तन्तुओं की अस्थिरता	अच्छा आहार नियमित जीवन बार-बार आराम देना	
3. बार-बार मदद माँगना	क—परावलम्बन	दूसरों ने निर्णय कर दिया हो	आत्म-निर्णय	शिक्षक द्वारा निर्णय कर देना
	ख—ग़ैर ज़िम्मेदारी	दूसरों ने सार-सँभाल की हो	ज़िम्मेदारी देना	शिक्षक द्वारा ज़िम्मेदारी लेना
	ग—अपने में अविश्वास	निराशा	सन्तोषजनक काम	अधिक निराशा पैदा करना
	घ—स्वाभिमान का अभाव	प्रकट में निन्दा या टीका	व्यक्तिगत प्रोत्साहन	प्रकट रूप में अधिक टीका करना
	च—आलसीपन	अपर्याप्त पोषण मानसिक मन्दता अपर्याप्त व्यायाम अपर्याप्त आराम आहार और निद्रा की अनियमितता	पर्याप्त पोषक आहार भरपूर काम उचित व्यायाम आराम नियमितता	आचार, मादक पेय, मिठाइयाँ वग़ैरा का उपयोग बन्द करके रखना आलसी कह कर चिढ़ाना

1	2	3	4	5
	छ–क्रियाशक्ति का अभाव	काम दूसरों ने कर दिए हों निर्बल क्रिया शक्ति	स्वयं काम करने देना	शिक्षक द्वारा काम कर देना
4. मन्द प्रगति	क–यह विश्वास कि निराश होना पड़ेगा	प्राप्त निष्फलता	सन्तोषजनक काम	अधिक निराशा
	ख–आत्म विश्वास की कमी	टीका-टिप्पणी	प्रोत्साहन	दूसरों के साथ तुलना
	ग–अपूर्ण तैयारी	ऊँचे नम्बर पर चढ़ा दिया गया हो	उचित स्थान पर बैठाना	सबक़ याद करवाना
	घ–काम में मन्द उत्साह	शिक्षक प्रेरित काम	स्वयं प्रेरित काम	शिक्षक की प्रेरणा
	च–क्रिया शक्ति का अभाव	ज़िम्मेदारी दूसरों की हो	ज़िम्मेदारी सौंपना	काम करवा लेना
		क्रियाशक्ति की कमज़ोरी	आत्म-निर्णय	शिक्षक द्वारा निर्णय कर देना
	छ–महत्वाकांक्षा का अभाव	काम में या काम करने में असन्तोष	अच्छा काम और प्रोत्साहन	उत्साह भंग करना
	ज–मुहर्रमीपन	अहन्ता-प्रधान	दूसरों की परवाह करना सिखाना	उपदेश करना
	झ–असावधानी	नीरस काम	विनोद	
			काम में परिवर्तन शारीरिक जाँच	असावधान कहना
	ट–अस्वस्थ शरीर	अनुचित आहार	उचित आहार	आचार, मादक पेय, मिठाइयाँ वग़ैरा का उपयोग
		अपर्याप्त व्यायाम	पर्याप्त व्यायाम	पाठशाला में रोक कर रखना
		अपर्याप्त आराम	पर्याप्त आराम	
		अनियमितता	नियमितता	नाटक, सिनेमा अधिक देखना
	ठ–विस्मृति	नीरस काम	विषय को समझाने में विविधता	भुलक्कड़ा कहना
		विचार-साहचर्य की मन्दता	प्रत्यक्ष अनुभव	
	ड–बालिशता	ऊँची कक्षा में चढ़ाना अविकसित मानस	नीची कक्षा में उतारना	ऊँची कक्षा में चढ़ाना

1	2	3	4	5
5. ठगना	क–परिणाम का भय	दूसरों का मजाक दूसरों की टीका अनुचित दण्ड नापास होना	सन्तोषजनक काम प्रोत्साहन स्वाभाविक दण्ड प्रगति का उचित निर्णय करना	'लुच्चा' कहना सबके सामने बुरा-भला कहना अधिक नापास करना
	ख–अपने में अविश्वास	काम स्पष्ट रूप से बताया न गया हो अधिक ऊँचे नम्बर पर चढ़ा दिया गया हो	प्रश्न पूछने के लिए प्रोत्साहित करना उचित स्थान पर रखना	टीका, व्यंगोक्ति चढ़ाना
	ग–जैसे-तैसे काम पूरा करने की आदत	ऐसे काम को बरदाश्त किया गया हो	व्यक्तिगत काम सौंपना	ऐसे काम की तारीफ़ होती हो
	घ–नक़ल करने की आदत	अनुकरण और नक़ल करना	रचनात्मक काम की योजना	नक़ल करवाकर पढ़ाई जारी रखना
	च–जवाब देने के लिए ही काम करने की आदत	यह धारणा कि घट-नाओं की जानकारी ही शिक्षा है	विकासक उद्देश्य रखना	सिर्फ़ जवाब देखकर ही नम्बर देना
	छ–स्वाभिमान की कमी	काम का हल्का होना	प्रोत्साहन	हल्की टीका करना
	ज–बड़ा काम करने का शौक़	सौंपे गए काम का खूब आसान होना	कठिन और अधिक रुचिकर काम सौंपना	ऐसी कठिनाई पैदा कर देना कि ठगना असम्भव हो जाए
6. दुराग्रह या चिड़चिड़ापन	क–ईर्ष्या	अनुचित निर्णय परिवार वालों के मन में बालक के प्रति रुचि या प्रेम न हो भाई, बहन या शाला के साथियों के साथ पक्षपात किया जाता हो	बालक के प्रति ममता व्यक्त करना	निन्दा दूसरे की तारीफ़
	ख–बात-बात में उत्तेजित हो उठना	सबसे सामने टीका करना दोष दिखाना	सहानुभूति प्रोत्साहन	सबके सामने निन्दा करना
	ग–तिरस्कार-युक्त अनादर	टाँग अड़ाते रहना अफ़सरी चलाना	टाँग न अड़ाना स्वतंत्रता देना	सलाह और रहनुमाई
	घ–दुखीपन	कलहपूर्ण घर बाहरी कठिनाइयाँ मैत्री का अभाव	चिन्ता, सावधानी ममता दिखाना	व्यंग्योक्ति कठोरता दिखाना
	च–टेक पर डटे रहना	अति बलवान क्रिया-शक्ति	स्वानुभव	अफ़सरी चलाना

1	2	3	4	5
	छ–स्वार्थीपन	अति निर्बल क्रिया-शक्ति अपनी ही सँभाल रखना सिखाया गया हो	दूसरों का विचार करना	खुशामद करना
	ज–एकाग्रता	मनचाहा करने की आदत सुदृढ़ क्रियाशक्ति	एकाएक दखल न देना विनय	किट्-किट करते रहना
	झ–शंकाशीलता	अनुचित टीकाएँ	तटस्थ व्यवहार	अविचारी निर्णय निन्दा
7. बात-बात पर बुरा लगना	क–यह समझने की आदत कि टीका की जाती है	टीकाएँ अनुचित शंका	प्रोत्साहन उचित व्यवहार	अविचारी निर्णय
	ख–यह मान लेने की आदत कि तिरस्कार किया जाता है	अहन्ता	दूसरों का खयाल रखना निष्कपट बातचीत	गम्भीर बन जाना
	ग–मुहर्रमीपन	अति प्रामाणिकता	विनोद को समझना सिखाना	
	घ–ज्ञान-तन्तुओं की निर्बलता (Nervousness)	अनुचित आहार अनियमितता अपर्याप्त नींद ज्ञान-तन्तुओं की परम्परागत दुर्बलता	उचित आहार नियमितता भरपूर नींद	नसीहत, सजा
8. मूर्खता	क–आत्म-भान	शारीरिक हेरफेर	माता-पिता को ध्यान रखना चाहिए	जोर लगाकर करने का काम या मेहनत का काम
	ख–परस्पर विरोधी हित	अतिश्रम	काम से मुक्ति नम्बर 2 देखिए	
	ग–जिम्मेदारी का अभाव		,, ,,	
	घ–महत्वाकांक्षा का अभाव		,, ,,	
	च–क्रियाशक्ति का अभाव		,, ,,	
	छ–बालिशता	अपरिपक्वता	नीचे के दरजे में उतारना	ऊपर के दरजे में चढ़ाना
9. सयानेपन का अतिरेक,	क–मिथ्याभिमान	झूठी प्रतिष्ठा मिली हो	दूसरों की परवाह न करना सिखाया गया हो	क्रोध, दिल दुखाना,

1	2	3	4	5
वाचालता			प्रतिष्ठा छीन लेना	
चपलता	ख–व्यवहार का अज्ञान	जंगली वातावरण में पला-पुसा हो	साश्चर्य मौन अतिशय नम्रता विवेकपूर्ण अवगणना	अविवेक
	ग–बड़ा गिने जाने की आकांक्षा	औद्धत्य की प्रशंसा की गई हो	बड़प्पन से नीचे उतार देना	सबके देखते टोका करना
	घ–कुछ छिपाने की इच्छा	किसी कारणवश शरमाता हो	भरोसा दिलाना, हिम्मत बँधाना	
	च–ध्यान खींचने की आदत	घर पर उचित सार-सँभाल न रखी गई हो।	रुचिकर काम देना दूसरों का ध्यान रखने की बात सिखाना	सताना
	छ–ईर्ष्या	घर में परवाह न की गई हो स्वार्थ वृत्ति	मित्रता दूसरों का ध्यान रखना	दूसरों की प्रशंसा
	ज–सन्तुलन का अभाव	मिथ्या आदेश	शान्ति पूर्वक विचार करना स्थगित रखना आत्म-नियमन	क्रोध
	झ–चिढ़ाना		चिढ़ना नहीं	क्रोध

बालकों के गन्दे खेल

मैं जहाँ-जहाँ भी जाता हूँ, वहाँ-वहाँ माता-पिता द्वारा मुझसे यह सवाल अक्सर पूछा जाता है : 'कभी-कभी हमारा बालक गन्दे खेल खेलता है, और जब हम उसको टोकते हैं या मारते-पीटते हैं, तो वह उनको लुक-छिपकर खेलने लगता है, और सारी बात हमसे छिपाकर झूठ बोलता है। हम इन गन्दे खेलों से अपने बालकों को कैसे बचाएँ, और इसका क्या उपाय करें?'

हर एक माता–पिता के सामने यह सवाल किसी-न-किसी समय खड़ा होता ही है। शायद सब बालकों के जीवन में एक समय ऐसा आ ही जाता है कि जब वे इस तरह के गन्दे खेलों में उलझ जाते हैं, या उन खेलों के नज़दीक से गुज़र जाते हैं। सब माता-पिताओं को चाहिए कि वे इस मामले में थोड़ी भी लापरवाही न बरतें। यही नहीं, बल्कि कुछ खास-खास मामलों में वे पूरी-पक्की खबरदारी ज़रूर ही रखें।

अपने बचपन में मैं अपनी ननिहाल में एक लड़की की सोहबत में रहा था। इस समय मुझको याद नहीं पड़ता कि हम कोई खास गन्दा काम करते थे, लेकिन मेरे मन पर यह छाप रह गई है कि वह लड़की कोई गन्दा काम कराना चाहती थी। लेकिन हम उस बारे में कुछ जानते-समझते नहीं थे। शायद इसलिए हम गन्दे खेलों के फन्दे में फँसने से बच गए होंगे।

अपने अनुभव और अवलोकन के आधार पर मैं यह कहना चाहता हूँ कि बालकों में यह बुराई सहज है, ऐसा कहने की अपेक्षा यह कहना अधिक उचित और सच है कि यह वातावरण की उपज है। अधिकतर सोहबत की वजह से ही यह बुराई बालकों में आती है और सोहबत के कारण ही बालक इसको एक-दूसरे तक पहुँचाते हैं।

लेकिन मेरा अनुभव यह भी है कि बालकों को यह चीज़ बड़ों की तरफ से मिलती है। कई नौजवान छोटे बालकों के साथ अपनी दोस्ती बढ़ा लेते हैं, वे उनको पाई-पैसा, मोती अथवा खेलने और खाने की चीज़ें देते हैं, और बालकों को एकान्त में ले जाकर उनके हाथों का उपयोग गन्दे काम में करवाते हैं। बड़ी उमर के लोग बड़े बच्चों को दूसरे ढंग से बिगाड़ते हैं, और मौका मिलने पर उनको उस बुराई की लत लगा देते हैं।

छोटे बालक या बड़े बालक ऐसे नौजवानों की सोहबत में पड़कर गन्दे खेल सीख लेते हैं। इन खेलों में उनको कुछ मजा आने लगता है, इसलिए बाद में वे इन खेलों को आपस में खेलना शुरू कर देते हैं। बड़े लड़के के जिन गुप्त परिस्थितियों में इन खेलों को सिखाते हैं, वैसी ही परिस्थिति में छोटे बालक भी इसको खेलते हैं, और सब कुछ छिपाना चाहते हैं।

इसके अलावा, बड़ी उमर की लड़कियाँ भी छोटे बालकों को इन गन्दे खेलों की ओर खींच सकती हैं। अपने आवेग को शान्त करने के लिए वे छोटे बालकों के साथ इस तरह खेलती हैं, और उनके अन्दर ऐसी गरमी पैदा कर देती हैं, कि जो बालकों को अच्छी लगती है। छोटे बालकों के प्रति ममता दिखाकर भी लड़कियाँ उनके साथ इस तरह के खेल खेलती हैं। इस सबका परिणाम यह होता है कि छोटे-छोटे लड़के-लड़की भी ऐसे गन्दे खेल खेलना सीख जाते हैं, और वे गुप्त रूप से इन खेलों का प्रचार भी करते रहते हैं। जब वे पकड़ लिए जाते हैं, तो हम उनको मारने-पीटते हैं या डाँटने-डपकते हैं इसलिए बाद में वे उनको अधिक गुप्ता के साथ खेलने लगते हैं।

अक्सर हमारे घरों में मेहमान वगैरा भी आते रहते है। ये लोग भी हमेशा गन्दी आदतों से मुक्त नहीं होते। इनके साथ हम अपने बालकों को सुरक्षित मानते हैं। लेकिन जब हमारे बालक इनके साथ सोते हैं, तो वे अन-जाने ही इनसे कुछ गन्दी बातें सीख जाते हैं। ऐसे मेहमानों में पुरुष और स्त्री दोनों का समावेश होता है। छात्रावास जैसी जगहों में रहने वाले विद्यार्थियों में तो ऐसे कामों की गुरुदीक्षा देने वाले लोग तैयार ही होते हैं। जब ऐसे गुरुओं या शिष्यों के साथ हमारे बालकों का परिचय होता है, तो उनको इस परिचय का लाभ मिले बिना रहता ही नहीं।

हम समझ सकते हैं कि यह बुराई कहाँ से आती है। इसमें सन्देह नहीं कि इस बुराई को जगाने में और इसका प्रचार करने में सोहबत, जान-पहचान और संग-साथ का बड़ा असर होता है।

इस बुराई के प्रति बालकों का झुकाव उनको विरासत में भी मिलता रहता है। हम बड़ी उमर के लोग जिस हद तक अपनी बड़ी उमर में या बचपन में इस बुराई के शिकार बने होंगे, उस हद तक इसका फल हमारे बालकों को भी भोगना ही होगा। हमारे बालकों को हमारी शक्ति और अशक्ति, अच्छाई और बुराई दोनों ही विरासत में मिलती हैं। बालक दूसरी बार हमारे बचपन को जीते हैं, और ऐसा करते हुए वे हमको हमारे असल स्वरूप की याद दिलाते हैं। गृहस्थ के रूप में हमारा अपना जीवन भी इस बुराई को जगाने में और इसके लिए अनुकूल वातावरण बनाने में मदद करता रहता है। अगर स्त्री-पुरुष के नाते हम ऐसे ढंग से रहें कि जो ढंग बालकों की आँखों के सामने आना नहीं चाहिए और जो बालकों के कानों से टकराना नहीं चाहिए, तो उस ढंग का असर बालकों पर पड़ेगा, और बालकों को उसकी हानि भुगतनी ही होगी।

बचपन में बालक अपने वातावरण के प्रति बहुत जाग्रत होते हैं। उन पर वातावरण का बहुत गहरा और पक्का अक्सर पड़ता है। पड़ोस के घर का, अपने घर का, और घर के सब लोगों का अच्छा-बुरा वातावरण मौसम की तरह बालकों को छूता रहता है, और उनको उसके हानि-लाभ का हिस्सेदार बनना ही होता है। जब बालक गहरी नींद में सो रहा होता है, उस समय भी उसके आसपास का वातावरण उसको प्रभावित करता ही रहता है। यह प्रभाव केवल शरीर पर ही नहीं, बल्कि मन पर और मन के मूल में रहने वाली अन्य शक्तियों और वृत्तियों पर भी पड़ता रहता है।

इस तरह बालकों की बुराइयों के कारणों में माता-पिता का आचरण भी एक कारण होता है। माता-पिता के रूप में हम यह जानते भी हैं कि अपने बालकों की हाज़िरी में हम कितने संयमी या असंयमी होते। इसलिए हम खुद यह नहीं कह सकते कि बालकों की बुराइयों की ज़िम्मेदारी में हमारा अपना कोई हिस्सा नहीं है।

यहाँ यह बात भी जानने लायक है कि जब घर के बड़ों और बूढ़ों तक को कोई काम नहीं मिलता, तो वे बुरे रास्ते पर चलने लगते हैं। हर एक आदमी कुछ-न-कुछ करना चाहता है। मनुष्य में कुछ-न-कुछ सृजन करते रहने की एक सहज वृति होती है। जब इस वृत्ति का पोषण नहीं होता, इसको अवसर नहीं मिलता, यानी जब आदमी के हाथों से काम-काज छुड़वा लिया जाता है, तब खाली बैठा-बैठा वह बरबादी का रास्ता पकड़ लेता है। मतलब यह कि वह किसी बुरे काम के फन्दे में फँस जाता है। विकृति या बुरी प्रवृत्ति अच्छी प्रवृत्ति को रोकने से पैदा होने वाला विष है। बहते पानी को रोकने से वह बदबू देने लगता है, और रोग का निमित्त बनता है। इसी तरह प्रवृत्ति को रोकने से उसमें विकृति उत्पन्न होती है, और उसके फलस्वरूप बुराइयाँ पैदा होती रहती हैं।

इसी तरह जब बालकों को घर में कहीं कुछ करने को नहीं मिलता, जब घर में उनको ऐसा कोई काम नहीं मिलता, जिसमें उनको अपने हाथों, पैरों, आँखों, और, मन, बुद्धि आदि का उपयोग करना पड़े, जब उनको सिर्फ अपना सबक़ ही तैयार करना होता है, तब काम-काज करते रहने की उनकी सहज रुचि का पवित्र झरना बहते-बहते रुक जाता है, और उसमें से गन्दगी और सड़ाँध पैदा होती है। सोहबत के असर से पैदा हुई बुराई भी तभी जोर पकड़ती है, जब बालकों को उनकी अपनी रुचि का कोई काम नहीं मिलता। यह बुराई तभी बढ़ती है, जब माँ-बाप इसको मिटाने के लिए बालकों के हाथों से सारे काम छीन लेते हैं, और उनको सबक़ तैयार करने के लिए किसी एक कोने में बैठा देते हैं। जो बुराई घर के बड़े लोगों में प्रकट होकर बड़ों से बालकों को मिलती है, बड़ों में उस बुराई के प्रकट होने का कारण भी यही है—काम का अभाव, झूठी फुरसत, काम-काज पर पाबन्दी, और काम-काज का विरोध!

हम जानते हैं कि अपने घरों में हम बालकों को कोई काम देते नहीं हैं, क्योंकि हम खुद ही समझ नहीं पाते कि बालकों को हम क्या काम दें। बालक कई तरह के काम करना चाहते हैं, लेकिन अलग-अलग कारणों से हम उनको

काम करने से रोक देते हैं। हम मानते हैं कि अमुक काम बालक नहीं कर सकते, क्योंकि वे उसको करना जानते नहीं है, क्योंकि काम करते-करते उनके शरीर को कोई चोट पहुँच सकती हैं, क्योंकि अगर बालक काम करते हैं, तो चीज़ें बिगड़ती हैं, बरतन बिगड़ते हैं, कपड़े वग़ैरा चीजें बिगड़ती हैं, क्योंकि काम करना बालकों के लिए ज़रूरी नहीं हैं, क्योंकि काम करने के बदले अगर वे अपना सबक़ तैयार करते हैं, तो वह उनका एक काम ही होता है। इस तरह जब हम बालकों के हाथों से एक के बाद एक सब काम छीन लेते हैं, तब बालकों में विकृति उत्पन्न होती है। आगे चलकर यह विकृति अनेक रूप धारण कर लेती है। सब प्रकार की बुराइयों में रुचि लेना, गन्दे काम करना, गन्दे खेल खेलना, गन्दी बातें बोलना, आदि ये सब विकृतियों के ही रूप हैं।

बालकों के गन्दे खेलों की जड़ में ये सारी बातें हैं। घरों में उनको बढ़ावा मिलता रहता है। वहाँ इनका पोषक वातावरण भी होता है।

ऐसी स्थिति में हम घर के बड़े-बूढ़े लोग इस मामले में क्या करें? सबसे पहला काम हम यह करें कि बालकों के हाथों में कुछ-न-कुछ काम सौंप दें। बालकों का लिखना-पढ़ना भी एक काम ही है, लेकिन इस काम से बालकों की सृजनात्मक वृत्ति को अपने विकास का पूरा अवसर नहीं मिलता। उसके द्वारा बहुत ही कम आराम और काम मिलता है। सृजनात्मक काम से मतलब है, ऐसा काम, जिसके ज़रिए बालक अपने हाथ-पैर का उपयोग करके कोई चीज पैदा कर सकें। जैसे मिट्टी के खिलौने बनाना, लकड़ी की चीजें बनाना हथौड़ी, कील और लकड़ी की मदद से जो भी चीज़ सूझे, सो बनाना, गड्ढे खोदना, बाग़ बनाना, पेड़ों को पानी पिलाना, झाड़ना-बुहारना, बरतन माँजना, कपड़े धोना, घर के सामान को सजा कर रखना, छुरी और कैंची की मदद से कई तरह की उपयोगी चीज़ें बनाना, आदि-आदि। ये सब काम बालक में विद्यमान सृजनात्मक वृत्ति को गति देंगे, उसमें जान डालेंगे और बालक को सन्तुष्ट करेंगे। इससे बालक का ग़लत रास्ते जाना सहज ही बन्द हो जाएगा। गन्दे खेल खेलकर शरीर और मन को गन्दा बनाने की अपेक्षा अगर इन खेलों में हाथ-पैर गन्दे होते हैं, या कपड़े गन्दे होते हैं, तो उससे कोई

नुकसान नहीं होता। इसके विपरीत, ये सारे खेल बालक के शरीर को अधिक उजला और मन को स्वच्छ और निरोगी बनाएंगे। गन्दे खेल मन की एक बीमारी है। मन की इस बीमारी की एक ही दवा है, काम—ऐसा काम जो बालक के लिए रुचिकर और उपयोगी हो।

ऊपर सुझाए गए कामों के अलावा नाटक खेलना, नाचना, खेलना-कूदना, सजाना, चीज़ों को ढंग से रखना, जमाना, मण्डप बनाना आदि काम भी बालकों की रुचि के काम होते हैं। ये सारे काम, ऊपर गिनाए गए सब काम, और हर वह काम, जिसमें मूल रूप से हाथों और पैरों का उपयोग होता है, जिसमें ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों के सहयोग से कोई चीज़ बनती है, बालकों को नीचे गिरने से रोक लेता है, और उनके चरित्र की रचना करता है।

बहुत-कुछ जान लेना चारित्र्य नहीं है। तोते की तरह यह बताना कि सच क्या है और झूठ क्या है, चारित्र्य नहीं है। सत् और असत् को समझना भी चारित्र्य नहीं है। चारित्र्य का अर्थ है, सच्चे काम करना और झूठे कामों से मुंह मोड़ना। और ऐसा आचरण तो वही कर सकता है, जिसके हाथ-पैर आदि कर्मेन्द्रियां और आंख-कान आदि ज्ञानेन्द्रियां स्वस्थ हैं, बलवान हैं, तेजस्वी हैं, और क़ाबू में हैं। हमेशा काम करते रहने से, हलचल करते रहने से, क़ाबू हासिल होता है। कुर्सी पर बैठ कर पढ़ते रहने से या सोचते रहने से क़ाबू हासिल नहीं होता। काम ही चारित्र्य की नींव है।

समझदार माता-पिताओं को चाहिए कि वे अपने बालकों को काम देते रहने की व्यवस्था करते रहें। बालकों को पढ़ाने के लिए शिक्षक रखना अपने आप में कोई काम नहीं है, उलटे, यह तो काम का विरोध है। जितने समय तक शिक्षक बालक को ज़बरदस्ती बिठाकर उसको पढ़ाता है, उतने समय में बालक अन्दर-ही-अन्दर सड़ता रहता, और गन्दा बनने की तैयारी में लगा रहता है। इसके विपरीत, जब बालक ख़ुशी-ख़ुशी खेलता है, कूदता है, नाचता है, गाता है, खोदता है, बीनता-चुनता है, और तोड़ता-फोड़ता है, उस समय वह सच्चा बन रहा होता है, महान् बन रहा होता है, और मनुष्यत्व को प्राप्त करने में लगा होता है।

अभावों वाले वातावरण में, शून्य की स्थिति में, कोई काम हो नहीं सकता। हमारा कर्तव्य है कि हम घर के वातावरण को काम-काज से भरा-पूरा बनाएँ और उसका पोषण करते रहें। इसलिए ऊपर जिन सृजनात्मक कामों की चर्चा की गई है, उन कामों के लिए आवश्यक साधन हमको अपने घरों में जुटाने चाहिए। घर में बालकों को एक जगह देकर वहाँ उनको उनकी रुचि के काम करने की पूरी स्वतंत्रता देनी चाहिए। बालकों के इन कामों से हम किसी कमाई की आशा न रखें। उनके कामों में सम्पूर्णता और सुन्दरता न आ पाए, तो हम उससे परेशान न हों। हम अपने बालकों से घर के बरतन नहीं मँजवाना चाहते। इसके लिए तो हमारे या नौकर के हाथ ही काफ़ी हैं। बालकों को हम इस विचार से काम करने के अवसर नहीं देते कि वे घर को झाड़-बुहार कर साफ रखें, और हमारी मेहनत बचा लिया करें। बल्कि हम तो बालकों को उनका जीवन बनाने लिए, उनके विकास के लिए, उनकी शक्ति बढ़ाने के लिए, उनको काम का वातावरण देते हैं। यहाँ बालकों का विकास ही लाभ-रूप है। घर की सफाई हो जाना या बरतनों का मँज जाना लाभ नहीं है। चारित्र्य-निर्माण की दृष्टि से इन कामों की क़ीमत बहुत ही कम है। यदि काम से चारित्र्य बनता है, तो काम अपने आप में एक मूल्यवान वस्तु बन जाता है, और वही परम लाभ है।

दूसरी बात सोहबत की है। इस मामले में माता-पिता के नाते हमको हमेशा चौकन्ना रहना चाहिए। जो बात छूतवाले रोगों की है, वही सोहबत की भी है। भले ही छूतवाले रोग बाहर से आकर लगते हों, पर वे नुक़सान तो कर ही जाते हैं। इसी तरह सोहबत भी बाहर की होती है, पर वह अपना बुरा असर छोड़ जाती है।

माता-पिता अपने घरों में व्यवस्था ऐसी रखें कि जब घर में बालक इकट्ठा होकर खेलें, तो वे किसी एकान्त जगह में, परदे की आड़ में, जीने के नीचे या आलमारी के पीछे न खेलें। कोई सुन न सके, ऐसी फुसफुसाहट आपस में न करें, और लुक-छिप कर या गुपचुप कोई काम न करें। जो कुछ भी करें, खुले में करें। वे बार-बार यह देखते-समझते रहें कि बालक किस

तरह के खेल खेल रहे हैं। यह भी देखते रहें कि पास-पड़ौस के कौन-कौन बालक आते हैं। बहुत बड़े बालकों को बिलकुल छोटे बालकों के साथ घुलने-मिलने न दें। बराबरी के बालकों में भी जो बालक एकान्त में जाकर बात करने या छिपकर खेलने को कहें, उन्हें बिदा कर दिया जाए। शुरू में वे एकान्त खोजेंगे, बाद में गुपचुप खेलेंगे, और अन्त में गन्दे खेल खेलने लगेंगे। इन सबका पहला क़दम एकान्त की खोज है। बिगड़े हुए बालक एकान्त का अर्थ समझते हैं। वे शुरू से इस बात की खबरदारी रखते हैं कि कोई उनको देख-परख न ले। हम यह मानकर न चलें कि अमुक-अमुक तो हमारे नाते-रिश्ते वाले हैं। उनको अविश्वास की नज़र से देखकर हम उनमें घबराहट भी पैदा न करें। फिर भी उनके रंग-ढंग से उनको पहचान कर हम उनको अपने बालकों से दूर कर दें। ऐसा करने में झूठी शरम या संकोच न रखें। ऐसे बालकों को हम बिदा कर दें। अपने बालकों से हम कह दें कि वे उनके साथ न खेलें। हम गन्दे बालकों के माता-पिताओं को भी सावधान कर दें। अगर मना करने पर भी हमारे बालक गन्दी आदतों वाले बालकों के साथ खेलने को दौड़ें, या उनके साथ खेलने का आग्रह करें, तो उनको वैसा करने से रोकने में हम हिच-किचाएँ नहीं। ऐसे मामलों में हम अपने बालकों को पहले से ही कह दें कि गन्दी आदतों वाले बालकों के साथ खेलना उचित नहीं। यदि बालकों को हमारी बात न जंचे, तो हम उनको रोकें। दूसरी तरफ, हम अपने बालकों के सामने तरह-तरह के सुन्दर कामों के साधन रख दें। हम बालकों को रोककर ही रह जाएँगे, तो बालक लुचपन से काम लेकर निकल भागेंगे, और हमको ठगकर अपना मनचाहा काम करेंगे। यही नहीं, बल्कि वे दुगुने जोर से बुराई के फन्दे में फँसेंगे, और दूसरों को फँसाएँगे।

आज की परिस्थिति में उचित यही है कि हम अपने बालकों को गलियों में खेलने के लिए न जाने दें। गलियाँ तो आज गन्दगी का घर बन चुकी हैं। बहुतेरे बालक वहीं से गन्दगी के या बुराई के कीटाणुओं को बटोरते हैं। बालकों को अपने घरों में बन्द करके भी न रखें। बालक घर छोड़कर गली में इसलिए जाते हैं कि वहाँ उनको दौड़ने, कूदने और अपनी बराबरी के लड़कों के साथ घुलने-मिलने के मौक़े मिलते हैं। अपनी एक उमर में बालकों को

दोस्तों की ज़रूरत होती है। अगर हम उनको अपने दोस्तों के बीच जाने से रोकते हैं; तो वे हमारी आँख चुराकर निकल भागते हैं, और दोस्तों की दोस्ती के साथ वे उनसे कुछ बुराइयाँ भी पा जाते हैं।

माता-पिता ऐसी व्यवस्था करें कि बालकों के मित्र उनसे मिलने घर पर आएँ। अपने बालकों के मित्रों को तो हमें अपनाना ही होगा। बालकों को स्वस्थ वातावरण देने के लिए उनके कुछ चुने हुए मित्रों को अपने घर में स्थान देना होगा। हम अपने मित्रों के लिए अपना बहुत-सा समय और काफ़ी पैसा खर्च करते ही हैं। ऐसी स्थिति में अपने बालकों के मित्रों के लिए हम आधा पैसा भी खर्च करेंगे, तो उससे उनको स्वस्थता और आनन्द दोनों मिलेंगे।

ख़ास तौर पर यह बात ध्यान में रखने लायक है कि गन्दे बदन और गन्दे कपड़ों वाले बालक गन्दी आदतों की तरफ़ जल्दी मुड़ते हैं। इनके ज़रिए से उनके अन्दर की गन्दी वृत्ति को पोषण मिलता है। इसलिए बालकों के शरीरों को, शरीर के सारे अंगों को साफ़ और स्वच्छ रखना चाहिए। कपड़े भी साफ-सुथरे और ढीले-ढाले ही पहनाने चाहिए। तंग कपड़ों से उनको बचना चाहिए। बालकों को खुजली चले या शरीर के अंगों को मलने-मसलने की इच्छा होने लगे, ऐसी स्थिति से उनको बचा लेना चाहिए। ये सब निषेध हैं। बालकों से सीधे-सीधे इनकी चर्चा किए बिना ही आवश्यक सारी व्यवस्था हमें करनी है।

एक काम हमें नहीं करना है। और वह यह है कि बालकों को गन्दे खेल खेलने के लिए हमको न तो उन्हें मारना-पीटना है, और न डाँटना डपटना ही है। मारने-पीटने की जो वृत्ति हममें बनी रहती है, वह इस बात की सूचक है कि हमारी सृजनात्मक वृत्ति क्षीण हो रही है। मारना-पीटना अपने आप में एक विकृति है, एक बुराई है। इसलिए मारने-पीटने से विकृति मिटती नहीं; बल्कि उसको बढ़ावा मिलता है। मार खाने वाला बालक इसी कारण दूसरों को मारना-पीटना सीख जाता है। यही नहीं, बल्कि वह दूसरों को गन्दा और बुरा बनाना सीख जाता है। मार-पीट के रसायन में से बुराई अपने आप पैदा हो जाती है! इसलिए मारना-पीटना सर्वथा त्याज्य ही है।

डराने-धमकाने से बालक लुच्चा बन जाता है, चोर बन जाता है। डर हमेशा आदमी को चोर और धूर्त बनाता है। डर के कारण ही बुद्धि का ग़लत

उपयोग होने लगता है। डर मनुष्य की शुद्ध वृत्ति को मलीन बना देता है। इसलिए जब बालक कोई गन्दा काम करे, तो हम उसको डाँटें-डपटें नहीं। जिस तरह बालक को बुखार आने पर हम उसको दवा ही देते हैं, उसी तरह अगर बालक किसी बुराई में फँस गया है, तो बुराई को बीमारी समझकर उसका इलाज करना ही जरूरी है। मारना-पीटना या डराना-धमकाना बीमारी का इलाज नहीं है, वह बीमारी को ढँकने का एक ढक्कन-भर है। जिस तरह ऊपर से दबाई गई बीमारी आखिर बीमारी ही बनी रहती है, और मनुष्य के लिए घातक सिद्ध होती है। उसी तरह जड़ को मिटाए बिना ऊपर से दबाई गई बुराई ज्यों की त्यों बनी रहती है, और अन्त में जब वह फूट कर बाहर निकलती है, तो बालक को हैरान और परेशान कर देती है। बालक की बुरी वृत्तियाँ हमें दबानी नहीं है, उनको तो दूर ही करना है। दाबी गई वृत्ति तो अन्दर की अन्दर ही बनी रहती है। दूर की गई वृत्ति ही दूर जाती है।

डराने-धमकाने की तरह ही बालक को शरमिन्दा भी नहीं बनाना चाहिए। शरमिन्दगी बालक को अपमान-जनक लगती है। वह सोचता है कि ऐसा करके शरम महसूस करने के बदले अच्छा यह है कि काम ऐसी खबरदारी के साथ किया जाए कि माँ-बाप को उसका पता ही न चल पाए। बालक सोचता है : 'अब मैं यह काम नहीं करूँगा।' लेकिन वह फिर उस को करने लगता है, क्यों कि उसके हाथ में करने लायक दूसरा कोई काम रहता ही नहीं।

हम बालकों को यह उपदेश भी न दें कि अमुक काम करना अच्छा है, और अमुक काम बुरा है। भलाई और बुराई को जानते-समझते हुए भी आदमी भले-बुरे काम करता ही रहता है, क्यों कि उसकी क्रिया-शक्ति निर्बल होती है। उपदेश से बात तो समझ में आ जाती है, उस पर अमल करने की शक्ति नहीं आती। उपदेश के कारण उत्पन्न समझदारी से मन में भावना जागती है, अच्छा संकल्प लेने की वृत्ति बनती है, किन्तु इससे उस पर अमल करने की शक्ति प्रकट नहीं होती, क्यों कि संकल्प को कार्य रूप में परिणत करने लिए क्रिया शक्ति के बल की आवश्यकता होती है। अतएव उपदेश देने के बदले हम बालक को काम करने के साधन दें, अच्छी सोहबत दें और अच्छा वातावरण दें। जब तक हाथों में काम है, जब तक मन में काम का चिन्तन है, जब तक सोहबत अच्छी है, और जब तक वातावरण स्वच्छ और निर्मल है, तब तक बालक बुराइयों से सुरक्षित हैं। •

परिशिष्ट

दो शब्द

इस पुस्तक को मैं आदर-पूर्वक गुजरात के समक्ष रख रहा हूं। मुझ को गर्व है कि ऐसी पुस्तक हमारी संस्था की ओर से प्रकाशित हो रही है। तीन बालकों के पिता के नाते मैं अपने घरों में इस पुस्तक का स्वागत एक अनोखे मेहमान के रूप में कर रहा हूँ।

यह एक बिलकुल सीधी-सादी पुस्तक है। इसके विषय किसी अनोखे तत्वज्ञान के विषय नहीं हैं। जीवन में हर दिन हमारे आस पास चक्कर लगाने वाले प्रश्न ही इस पुस्तक के प्रश्न हैं। और यही इस समूची पुस्तक की विशेषता है।

विवाह करना एक बात है, और विवाहित जीवन जीना, अर्थात् विवाहित जीवन को सुवासित बनाना, दूसरी बात है। माँ-बाप बन बैठना एक बात है, और माँ-बाप के नाते अपने अपने कर्त्तव्यों का पालन कर सकना दूसरी बात है। जो माँ-बाप बन चुके हैं, अथवा जो अभी इस पद के उम्मीदवार हैं, उन दोनों के लिए यह पुस्तक बहुत उपयोगी है।

यदि यह बात सच है कि समूची जनता के जीवन का निर्माण पालने में ही होता है, तो उस पालने की डोर को खींचने के लिए अधिकार प्राप्त करना होगा। बच्चे तो पशुओं और पक्षियों को भी होते हैं, लेकिन मानव-शिशु एक विशिष्ट प्राणी है, और उस पर सच्ची मानवता को अंकित करना माता-पिताओं का अपना एक पवित्र कर्त्तव्य है।

भाई ताराचन्द कोठारी ने अपनी धर्मपत्नी श्रीमती जासुद बहन के स्मरण में इस पुस्तक को छपवाकर दक्षिणामूर्ति को तो अपना आभारी बनाया ही है, किन्तु यदि मैं यह कहूँ कि ऐसा करके उन्होंने गुजरात के माता-पिताओं को भी आभारी बनाया है, तो वह अतिशयोक्ति नहीं होगी।

15-8-1934 —नानाभाई

आमुख

पूज्य स्वर्गीय गिजुभाई के शिक्षा-विषयक, माता-पिता-विषयक और अन्य विषयों की पुस्तकों का प्रकाशन गुजरात-बाल-विकास-संस्था की ओर से आरम्भ किया गया है। इस सम्बन्ध की जानकारी इस पुस्तक में अन्यत्र दी गई है।

यह पुस्तक माँ-बापों को ध्यान में रखकर लिखी गई है। पूज्य गिजुभाई ने बाल-शिक्षा के भगीरथ कार्य में शिक्षा-सम्बन्धी अनेक प्रयोग किए, खुद अपनी आँखों से देखे बिना, पुस्तकें पढ़कर ही, उन्होंने मॉन्तेस्सोरी पद्धति के (नूतन शिक्षण के) प्रयोग किए और एक तत्त्वपूर्ण शिक्षा-शास्त्र की रचना की। शिक्षा-सम्बन्धी अपने विचारों का प्रचार उन्होंने अनेक उपायों से किया। इस काम को करते-करते एक बात स्पष्ट रूप से उनके ध्यान में आई कि बाल-शिक्षा की गाड़ी शिक्षा-शास्त्र के एक पहिए पर चल नहीं सकेगी। दूसरा पहिया माँ-बाप का है। जब तक यह बात माँ-बापों तक पहुँचाई नहीं जाएगी, और जब तक इस काम में उनका पूरा-पूरा सहयोग नहीं मिलेगा, तब तक यह कार्य सफल नहीं हो सकेगा। इस बात की प्रतीति हो जाने पर उन्होंने **'शिक्षण पत्रिका'** में इस विषय पर लेख लिखने शुरू किए। इस पुस्तक में उन्हीं लेखों का संग्रह किया गया है।

इस पुस्तक में 'वैवाहिक जीवन की धन्यता कब समझ में आएगी?' शीर्षक लेख से शुरू करके घर, माता-पिता के और बालकों के सम्बन्ध, घर में बालकों को देने लायक काम आदि का विस्तृत विवेचन किया गया है, और माँ-बापों को ध्यान में रखकर ऐसे दूसरे भी कई विषयों की चर्चा की गई है। अन्तिम लेख में बालकों की लैंगिक विकृतियों के बारे में भी अध्ययन-पूर्ण चर्चा की है।

जिनको किसी भी क्षेत्र में अगुआ बनकर काम करना पड़ा है, उनकी मनःस्थिति ऐसी ही रहती है। इस विषय में हमारे देश में तो महात्मा गांधीजी का सबसे बड़ा उदाहरण मौजूद है ही। उन्होंने तो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में चंचु-प्रवेश किया था। गीता पर लिखे गए 'अनासक्ति-योग' से लेकर पाखाना-सफाई तक के हर किसी विषय पर उन्होंने लेख लिखे। आहार-सम्बन्धी प्रयोग, गो-सेवा, सामाजिक समस्याएँ, आर्थिक समस्याएँ जैसे हर क्षेत्र को स्पर्श किए बिना वे रह ही नहीं सके।

पूज्य गिजुभाई के विषय में भी कुछ ऐसा ही हुआ है। बाल-शिक्षा का मुख्य काम करते समय उनको भी कई मोरचों पर लड़ाइयाँ लड़नी पड़ी हैं। उन्होंने शिक्षा-विषयक साहित्य लिखा। बाल-साहित्य और प्रौढ़-साहित्य भी लिखा। वाचनमाला भी तैयार की। **'शिक्षण पत्रिका'** द्वारा माता-पिताओं तक लेख और भाषण आदि पहुँचाकर उन्होंने इस बात का प्रयत्न किया कि लोग उनके विचारों को प्रभावशाली ढंग से अपना सकें—हजम कर सकें। इनमें माता-पिताओं के लिए लिखी गई पुस्तकें अपना एक अलग स्थान और प्रभाव रखती हैं। उनमें नवीनता है। इन लेखों के आरम्भ में खुद गिजुभाई ने लिखा है कि इन में उनके द्वारा 'बालकों की वकालत' की गई है।

इस पुस्तक का उद्देश्य यह है कि माता-पिता अपने बालकों को समझने लगें, उनके साथ उचित बरताव करने लगें, और उनके प्रश्नों में वैज्ञानिक रीति से रुचि लेने लगें।

आज बाल मन्दिरों की संख्या बढ़ी है। माता-पिता बड़ी संख्या में अपने बालकों को बाल मन्दिरों में भेजने लगे हैं। किन्तु कोई 27 साल पहले लिखी गई इस पुस्तक का जो मुख्य उद्देश्य रहा, वह तो अभी तक पूरा हुआ लगता नहीं है। अधिकतर माता-पिता आज भी यह समझते नहीं हैं कि उनको अपने घरों में अपने बालकों के लिए स्वयं भी कुछ करना है, उनके प्रति माता-पिता का भी अपना कोई कर्त्तव्य है, और वे स्वयं उस कर्त्तव्य का पालन कर सकते हैं। इसलिए यह पुस्तक जितनी पहले उपयोगी थी, उतनी ही आज भी उपयोगी है। आज के हमारे अति व्यस्त, धाँधली-भरे और तरह-तरह के दबावों के बीच चलने वाले जीवन में यदि प्रत्येक माता-पिता अपने बालक के बारे में सोचने के लिए कुछ रुकेंगे, कुछ आत्मनिरीक्षण करेंगे और इस पुस्तक का अध्ययन करके इसमें दिए गए सुझावों का उपयोग करेंगे, तो यह पुस्तक उनको अनमोल मार्गदर्शन दे सकेगी।

अपनी इसी अभिलाषा के साथ मैं अपनी बात यहीं पूरी करता हूँ।

—नरेन्द्र गिजुभाई बधेका

गुजराती प्रकाशक के दो शब्द

गुजरात-बाल-विकास-संस्था की ओर से स्वर्गीय गिजुभाई-सम्मान-थैली-प्रकाशन-माला की चौदहवीं पुस्तक के रूप में 'माँ बापों ने' नामक यह अत्यन्त उपयोगी पुस्तक प्रकाशित करते हुए हमको बहुत ही प्रसन्नता हो रही है।

जिससे बालक सुखी बन सकें और अपना सर्वांगीण विकास कर सकें, ऐसी परिस्थिति निर्माण करने के काम को स्वर्गीय गिजुभाई ने अपने जीवन का मुख्य काम मान लिया था। ऐसा लगता है कि गिजुभाई का जन्म ही इस काम के लिए हुआ था। श्री दक्षिणामूर्ति-बाल मन्दिर की स्थापना से लेकर अपने जीवन के अन्त तक अविरत परिश्रम करके उन्होंने जो अनेकानेक काम शुरू किए थे, उनके फलस्वरूप गिजुभाई के हृदय से जिस साहित्य की सृष्टि हुई उस अद्वितीय साहित्य को आज के ज़माने में उपलब्ध कराते हुए उनके शिष्यों और भक्तों को तो आनन्द की अनुभूति होगी ही न!

आज के मंगल अवसर पर हमको सहज ही गुजरात की राष्ट्रीय और शास्त्रीय शिक्षा की अद्वितीय प्रयोग-भूमि के रूप में उस श्री दक्षिणामूर्ति-विद्यार्थी-भवन की याद आ रही है, जिसके द्वारा स्वर्गीय गिजुभाई ने अपनी जीवन-साधना सिद्ध की थी। इस याद के साथ ही हमारी आँखों के सामने इस भवन के आधे संस्थापकों में से दो मुख्य संस्थापक खड़े होते हैं, जिनमें एक हैं, भावनगर-स्टेशन के उस समय के स्टेशन मास्टर स्वर्गीय हर गोविन्द अजरामर पण्ड्या, यानी स्वर्गीय गिजुभाई के मामा, और दूसरे हैं, गुजरात के वर्तमान युग के शिक्षा-शास्त्री पूज्य नृसिंह प्रसाद कालिदास भट्ट। हमारे मन में विचारों की एक तरंग उठती है कि जिस संस्था को जन्म देकर, जिसका पालन-पोषण और संवर्धन करके, जिसको गुजरात की एक अद्वितीय शिक्षा-संस्था का रूप दिया, उस संस्था के मोटा भाई और नाना भाई माने गए इन महानुभावों की जोड़ी ने यदि दक्षिणामूर्ति संस्था का शुभारम्भ ही न किया होता, तो क्या स्थिति बनती? और यदि उन्होंने अत्यन्त उत्साह के साथ श्री दक्षिणामूर्ति-बाल मन्दिर शुरू कर के उसके आचार्य के पद पर स्वर्गीय गिजुभाई को नियुक्त न किया होता, तो क्या होता? जिस संस्था के द्वारा गुजरात के और भारत के दूसरे प्रान्तों के भी हमारे समान अनेक व्यक्तियों को बालक के और बाल-शिक्षा के बारे में एक नई ही दृष्टि मिली, उस संस्था के आद्य संस्थापक के रूप में जिन्होंने स्वर्गीय गिजुभाई को अपना जीवन-कार्य करने के लिए पूरी-पूरी अनुकूलता कर दी, उन स्वर्गीय मोटा भाई और पूज्य नानाभाई भट्ट के प्रति हमारे अन्तरतर में जो आदरभाव और पूज्य भाव है, उसको व्यक्त करने की दृष्टि से इस युगल को कृतज्ञता-पूर्वक याद कर के अपना यह प्रकाशन उनको पूज्यभाव से समर्पित करते हुए हम अपने हृदय में सात्विक आनन्द का अनुभव कर रहे हैं। श्री दक्षिणामूर्ति बाल मन्दिर के प्रति और उसके संचालक स्वर्गीय गिजुभाई के प्रति हमारे हृदय में जो भाव हैं; उनको शब्द-बद्ध करने की शक्ति हमारी लेखनी में नहीं है। इसलिए श्री दक्षिणामूर्ति-बाल मन्दिर का भवन बनवाकर स्वर्गीय गिजुभाई को उनके जीवन-कार्य में अनुकूलता कर देने वाले स्वर्गीय हीरालाल अमृतलाल शाह को हमने इस माला का अपना एक प्रकाशन अर्पित किया है, और आज यह पुस्तक हम मोटा भाई और नाना भाई की जोड़ी को अर्पित कर रहे हैं।

दूसरी एक दृष्टि से विचार करने पर भी हमको यह लग रहा है कि 'मां-बापों ने' नाम की यह पुस्तक इस युगल को समर्पित करना सर्वथा उचित ही है।

स्वर्गीय हर गोविन्द भाई को उस समय बहुत खुशी हुई थी, जब उनके पुत्र-तुल्य भानजे स्वर्गीय गिजुभाई भरपूर कमाई का अवसर देने वाली अपनी वकालत छोड़कर श्री दक्षिणा-मूर्ति संस्था के आजीवन-सेवक के रूप में उसके साथ जुड़ गए थे। इससे हमको पता चलता है कि वे सचमुच एक योग्य पिता थे, क्योंकि जब समझदार और सुयोग्य माता-पिता अपनी

सन्तान को प्रेय के बदले श्रेय के मार्ग पर ले जाते हैं, तो वे आनन्द का ही अनुभव करते हैं। ऐसे योग्य पिता-तुल्य स्वर्गीय गिजुभाई के मामा स्वर्गीय हरगोविन्द भाई को और अपने निज के बालकों के अतिरिक्त अपने अनेकानेक विद्यार्थियों आदि के दिलों में जिन्होंने पिता का-सा स्थान पाया है, और जिन्होंने अपने विद्यार्थियों के श्रेय की भावना का सतत सेवन किया है, उन हमारे पिता-तुल्य गुरु पूज्य नानाभाई को, सब श्रेयार्थी माता-पिताओं के प्रतिनिधि के रूप में 'माँ-बापों ने' नामक यह पुस्तक अर्पित किए बिना हम रह नहीं सकते, इसलिए अपने अन्तर के भक्ति-भाव के साथ इस युगल को प्रणाम करके हम यह पुस्तक इसको समर्पित कर रहे हैं।

हमारी एक मात्र अभिलाषा यही है कि सब माता-पिता इस पुस्तक को पढ़ें, इस पर विचार करें, और अपने बालकों के सर्वांगीण विकास के काम में सहायक बनकर भावी पीढ़ी को श्रेय के मार्ग पर ले जाने में उसकी सहायता करें। जयजगत्।

गुजरात-बाल-विकास-संस्था की ओर से
—वजु भाई दवे और सोमा भाई पटेल